शंकराचार्य और उनकी परम्परा



डॉ० रामजी मिश्र

शंकराचार्य और उनकी परम्परा



शंकराचार्य और उनकी परम्परा

डा० रामजी मिश्र

मधूलिका प्रकाशन

190बी/10 राजरूपपुर, इलाहाबाद

प्रकाशक

मधूलिका प्रकाशन

190बी/10 राजरूपपुर,

इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित

★

प्रथम संस्करण - 2001

★

मूल्य 100/- रुपये

★

लेजर कम्पोजिंग

ग्राफिक वर्ल्ड

Phone : 0532-630997

★

प्रिन्टर्स

एडवान्स क्रिएटिव सर्विसेज,

इलाहाबाद

"*Sankaracharya Aur Unkee Paramampara*' By : Dr. Ramjee Mishra

समर्पण

पूज्य पितृव्य पं. राम अक्षयवर मिश्र को।

जिनको कभी देखा नही, जिनकी यशः कीर्ति मात्र सुना हूँ

तथा पूजनीया चाची श्रीमती कौशिल्या देवी को!

जिनकी ममतामयी छाँव में,

पलने, पढ़ने, लिखने का

अवसर मिला।

|| श्री हरिः ||

|| गुरुस्मृतिः ||

नारायणं पद्मभवं वशिष्ठं शक्तिं च तत्पुत्र पराशरंच।
व्यासं, शुकं, गौडपदं, महान्तं, गोविन्द योगीन्द्रमथास्य शिष्यम्।।
श्री शंकराचार्यमथास्य पद्मपादं च हस्तामलकं च शिष्यम्।
तंत्रोटकं वार्त्तिककार मन्यानस्मद् गुरुन्सन्तत मानतोऽस्मि।।
श्रुतिस्मृतिपुराणानामालयं करुणालयम्।
नमामिभगवत्पादशंकरं लोक शंकरम्।।
शंकरं शंकराचार्यम् केशवं बादरायणम्।
सूत्रभाष्यकृतौ वन्दे भगवन्तौ पुनः पुनः।।
ईश्वरो गुरुरात्मेति मूर्त्तिभेद विभागिने।
व्योमवतव्याप्तदेहाय दक्षिणामूर्त्तये नमः।।
नारायण समारम्भांश्रीशुकाचार्य मध्यमाम्।
शंकराचार्य पर्यन्ता वन्दे गुरु परम्पराम्।।
श्री शंकराचार्य नवावतारं विद्वत्वरेण्यञ्च यतीन्द्र मुख्यम्।
श्री रामराज्यादर्श प्रवर्त्तकं, वन्दे सदाश्रीकरपात्रिणम् गुरुम्।।

उपस्थापन

भारत की मूल संस्कृति अत्यन्त प्राचीन और सर्वश्रेष्ठ है। इसमें प्राणी के वास्तविक स्वरूप आत्मा की एकान्त सनातन-नित्यता की मान्यता को प्रतिष्ठित किया गया है। वह शाश्वत, पूर्ण और अमर है। इसमें निर्बाध रूप से निरन्तर आगे बढ़ते रहने की अन्तर्निहित शक्ति है। इसका महान प्रासाद चार स्तम्भों पर चिर-प्रतिष्ठित है। वे हैं वेद- (निगम), स्मृति, पुराण और वेदान्त। भारत की समस्त भाषाओं का समग्र साहित्य इन्हीं चारों का विकास और विस्तार है। निगम के साथ आगम भी अनुस्यूत है। लक्ष्य की दृष्टि से इनमें यथार्थतः कोई पार्थक्य नहीं है। अधिकारी और साधन की दृष्टि से सामान्य भेद भी अभेद में पर्यवसित है। 'अधिकारी-विभेदेने शास्त्राण्युक्तान्य शेषतः।' अधिकारियों के भेद से क्षमता को दृष्टि में रखकर सम्पूर्ण शास्त्रों की रचना की गयी है।

प्राचीन काल से ही भारतवर्ष की अपनी एक विशेषता रही है। और वह है उसकी धर्म प्राणता। यहाँ के ऋषियों, महर्षियों एवं सन्तों का तर्क सम्मत यह दृढ़ मत है कि विश्व के सुखाकांक्षी प्राणियों की समस्त समस्याएँ धर्माचरण से ही हल हो सकती हैं। हर प्राणियों की सभी चेष्टाएँ सुख के लिए होती हैं, किन्तु सुख बिना धर्म के नहीं प्राप्त हो सकता। अतः व्यक्ति को धर्मपरायण होना चाहिए। जन्मान्तर के प्रभाव और माया के प्रबल झंझावात से प्रवाहित होकर सुखाकांक्षी जीव जब अज्ञानवश धर्म से विमुख होकर कुमार्ग में चलने लगता है, तो अशुद्ध अहन्तामन्यता में ग्रस्त हुआ विविध सांसारिक दुःखों से सन्तप्त एवं जन्म-मरण के चक्र में भ्रमित होता रहता है। इस परिस्थिति में भगवान् द्वारा उपदिष्ट वेदशास्त्र प्रतिपादित मार्ग का अनुसरण ही एकमात्र सुविचारित मार्ग रहता है। इस मार्ग के प्रदर्शक होते हैं आप्तकाम, पूर्णकाम, आत्माराम, परमनिष्काम ऋषि मुनि गण। इन्हीं ऋषियों की परम्परा में आद्य जगद्गुरु शंकराचार्य का अवतरण एक अलौकिक घटना मानी जाती है। आद्य जगद्गुरु शंकराचार्य का प्रातः स्मरणीय नाम, प्रकाण्ड पाण्डित्य योगसिद्धि ब्रह्मनिष्ठा एवं महनीय विपुलकीर्ति, अद्भुत चरित आज भी किसी से छिपा नहीं है। उन्होंने अपने प्रकाण्ड पाण्डित्य, योगशक्ति से सत्यसनातन धर्म की अमरपताका को न केवल फहराया अपितु वेदों और शास्त्रों की परम्परा को अक्षुण्ण रखा, और परमपावन भारतभूमि से नास्तिकवाद का उन्मूलन किया।

वाणी चेतना की अमरदेन है। वाणी के बिना जगत सूना है। जीवन पंगु है। संसार के प्रायः सारे व्यवहार वाग्व्यापार पर ही निर्भर है। वाणी केवल विचारों के विनिमय का ही माध्यम नहीं अपितु विश्व में जो कुछ सत्य है, शिव है, सुन्दर है उन सबकी व्यञ्जक है। इस वाणी की दूसरी प्राचीन संज्ञा वाक् है। ऋग्वेद के अनुसार वाक् को देवों ने उत्पन्न किया "देवीं वाचमजनयन्त देवाः।" वाद संज्ञा है, जो संस्कृत भाषा की धातु 'वद्' से बना है। 'वद' का अर्थ होता है 'बोलना'। इसलिए वाद का अर्थ हुआ कथन या मान्य सिद्धान्त। वाद वाणी का व्यापार है। इसी के द्वारा अपनी जानी हुई बातें

दूसरे को बतायी जा सकती हैं। यह बताने का कार्य तीन प्रकार से सम्पन्न होता है, यथा वाणी द्वारा बोलकर, हस्तादि द्वारा लिखकर अथवा मूर्ति, चित्र आदिक बनाकर। इसलिए भगवान् शंकराचार्य के महनीय कार्य एवं उनकी विशाल परम्परा को मैने लिखकर व्यक्त करने का निश्चय किया। यह मेरा नहीं आदिशक्ति का ही वागव्यापार है।

इधर शंकराचार्य की पवित्र परम्परा को विकृत करने का षडयन्त्र चल रहा है। देश में स्वयंभू शंकराचार्यों की बाढ़ सी आ गयी है। ऐसी स्थिति में भगवान् शंकराचार्य द्वारा स्थापित पीठों में कालक्रम से अब तक कितने शंकराचार्य हुए हैं ओर वर्तमान में कौन हैं किस पीठ पर आचार्य का मनोनयन कैसे होता है- आदि का अधिकृत वर्णन आवश्यक एवं समीचीन था। मैंने इस पुस्तक का वर्ण्य विषय इसे ही बनाया है। इस पुस्तक का उद्देश्य भगवान् शंकराचार्य की पवित्र परम्परा एवं भारतीय मनीषा के उदात्त विचारों को जन जन तक पहुँचाना है। यदि सुधीजन इससे कुछ लाभ उठा सकें तो मैं अपने परिश्रम को सार्थक समझूँगा।

प्रस्तुत कृति के प्रणयन में जिन महानुभावों, विद्वज्जनों का सहयोग एवं आशीर्वाद प्राप्त हुआ है उनमें तन्त्रशास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान डॉ० परमहंस मिश्र, आनन्द स्वरूप ब्रह्मचारी, हरिश्चन्द्र स्नातकोत्तर महाविद्यालय वाराणसी के विधि प्राध्यापक डॉ० श्रीप्रकाश मिश्र, इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद में दर्शन विभाग के पूर्व प्राध्यापक डॉ० सी.एल.त्रिपाठी, महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ वाराणसी के संस्कृत विभाग के उपाचार्य डॉ० प्रभुनाथ द्विवेदी, आकाशवाणी इलाहाबाद के केन्द्र निदेशक डॉ० रजनीश प्रसाद मिश्र, हिन्दी दैनिक अमृत प्रभात के सम्पादक डॉ० जगदीश द्विवेदी सर्वप्रमुख हैं। इन विद्वानों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना मैं अपना परम् कर्त्तव्य मानता हूँ।

संचेतना साहित्यिक संस्था प्रतापगढ़ के संस्थापक एवं साहित्यकार कवि श्री दयाशंकर शुक्ल 'हेम', पं. सुखपतिराम इण्टरमीडिएट कालेज साहबगंज प्रतापगढ़ के हिन्दी प्रवक्ता कवि श्री श्यामशंकर शुक्ल 'श्याम' साहित्यकार कवि निर्झर प्रतापगढ़ी, जनप्रिय सेवा संस्थान प्रतापगढ़ के अध्यक्ष अन्नूभाई, राजकीय क्षय रोग चिकित्सालय तेलियरगंज इलाहाबाद के वरिष्ठ चिकित्साधिकारी डॉ० एन.पी.सिंह, सुल्तानपुर के यशस्वी चिकित्सक डॉ० ओम प्रकाश त्रिपाठी का भी आभारी हूँ जिनकी प्रेरणा एवं सहयोग ग्रन्थ को पूर्णता प्रदान करने में सहायक रहा है।

गीताप्रेस गोरखपुर से प्रकाशित 'कल्याण' पत्र एवं वाराणसी से प्रकाशित दैनिक 'सन्मार्ग' के विशेषांको से मुझे अतीव सहायता मिली है, इसके लिए मैं कल्याण परिवार एवं उसके यशस्वी लेखकों, दार्शनिकों एवं विद्वानों का आभारी हूँ। मैं उन सभी लेखकों, दार्शनिकों एवं विद्वानों का भी आभारी हूँ, जिनकी कृतियों से मुझे इस ग्रन्थ के प्रणयन में अतीव सहायता मिली है।

सेवा की अत्यधिक व्यस्तता एवं बहुल झंझावातों के कारण भी जो मैं इस ग्रन्थ के प्रणयन हेतु समय निकाल सका हूँ उसमें मेरी पत्नी श्रीमती जया मिश्रा का अविस्मरणीय योगदान रहा है,

एतदर्थ मैं उन्हें साधुवाद देता हूँ। चाची श्रीमती कौशिल्या देवी एवं अग्रज पं. अरुण कुमार मिश्र, भाभी श्रीमती कान्ती मिश्रा का स्नेहाशीष भी मेरे आशा का पुंज रहा है, अतएव उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना मैं अपना परम् कर्त्तव्य मानता हूँ।

इस धन्यवाद कृत्य के अवसर पर यदि लेखक के अनुज पं.रामकुमार मिश्र शाखा प्रबन्धक सुलतानपुर क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक एवं लेखक के पुत्र चि० महेन्द्रमणि मिश्र, पुत्रियाँ कु० अर्चना एवं कु० प्रज्ञा तथा भतीजे चि० वृजेन्द्रमणि मिश्र, सुरेन्द्रमणि मिश्र, देवेन्द्रमणि मिश्र एवं राघवेन्द्रमणि मिश्र तथा भतीजियाँ श्रीमती ऊषा, कु० नीलम, माधुरी एवं पल्लवी का स्मरण न आया होता तो यह अधूरा ही रहता। यह सब नितान्त अपने हैं, और मैं इनके प्रत्येक शुभ की कामना करता हूँ।

मैं अपने उन सभी मित्रों, सम्बन्धियों और शुभाकांक्षियों के प्रति भी कृतज्ञ हूँ, जिनकी सद्भावना एवं सहयोग प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से इस उपलब्धि में निहित है। इन सबके अतिरिक्त आचार्य प्रकाशन इलाहाबाद के सुयोग्य प्रकाशक श्री सर्वेश शुक्ल का भी मैं आभारी हूँ जिन्होंने अल्प समय में ही इस पुस्तक का प्रकाशन किया है।

इस ग्रन्थ में जो गुण हैं, जो अच्छाइयाँ है, वे विद्वज्जनों के आशीर्वाद का परिणाम है। इतने पर भी इस कृति में प्रकाशन सम्बन्धित एवं 'अनन्त पारं किल शब्द शास्त्रम्' के अनुरूप अन्य त्रुटियों का पाया जाना असम्भव नहीं है। मैं इनके लिए क्षमा प्रार्थी हूँ, और सुझावों के लिए प्रत्याशी हूँ।

आज सम्पूर्ण विश्व में जब आद्य शक्ति, जगज्जननी माँ जगदम्बा की उपासना एवं अनुष्ठान का पर्व शारदीय नवरात्रि धूमधाम हर्षोल्लास से मनायी जा रही है, मैं यह ग्रन्थ उन्हीं के श्री चरणों में अर्पित करता हूँ।

शुभम्!

जयाभवन

छोटा बघाड़ा, इलाहाबाद

विनयावनत

रामजी मिश्र

शारदीय नवरात्र, संवत् 2057

विषयानुक्रमणिका



वेदान्त दर्शन

संसार के सभी धर्मो का अन्तिम लक्ष्य एकत्त्व की अनुभूति ही है, किन्तु संसार के धार्मिक इतिहास के अध्ययन से यह बात समझ में आती है कि इस एकत्त्व की अनुभूति की बात को भारतवर्ष के प्राचीन ऋषियों ने जिस प्रकार समझा, और अध्यवसाय पूर्वक स्वात्मसात् किया और सिद्ध कर दिखाया वैसा विश्व के किसी भी राष्ट्र मनीषी ने न तो समझा और न ही इसका अनुभूति के स्तर से अनुभव ही किया। सहस्रों वर्षो से हिन्दू इस बात को समझे हुए हैं कि 'सत्य एक है' पर उसकी प्राप्ति के मार्ग अनेक हैं।- संसार के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद में यह उद्घोषित सत्य उक्ति है कि ''एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति।' अर्थात सत्य एक ही है और सद्विप्र संस्कार संपन्न ब्राह्मण लोग उसे अनेक नामों से अभिहित करते हैं। यहूदी उसे 'जेहोवा' कहते हैं। ईसाई God (गाड) या स्वर्गस्थ पिता कहते हैं, मुसलमान अल्लाह कहकर पूजते हैं। बौद्ध बुद्ध, पारसी अहुर मज्द और हिन्दू ब्रह्म या ईश्वर कहते हैं। वह चीनियों का तितीन है। इसी मूल सत्य पर वेदान्त की सम्पूर्ण सिद्धान्तवादिता का ढाँचा खड़ा है। सत्ता की एकता का सिद्धान्त ही वेदान्त विविध नामों से प्रस्थापित करता है। वेदान्त द्वैत अद्वैत,विशिष्टाद्वैतादि सभी सम्प्रदायों, सभी धार्मिक विचारों, उनके विभिन्न स्वरूपों की प्रतिष्ठा के लिए इतना अच्छा और सुदृढ़ आश्रय स्थान प्रदान करता है कि उतना कोई दार्शनिक या धार्मिक सम्प्रदाय नहीं करता। इसमें उसकी बराबरी कोई दार्शनिक मतवाद नहीं कर सकता। वेदान्त के विषय में निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि, यह एक ऐसे विश्वधर्म का संस्थापक है जो संसार के सभी विशेष धर्मों को अपने अन्दर समाहित करने में सक्षम है।

वेदान्त के अनेक स्वरूप हैं। इसके द्वैत सम्प्रदाय में जरथुस्त्र प्रवर्तित पारसीधर्म, यहूदीधर्म, ईसा का ईसाईधर्म, इस्लामधर्म आदि सगुण साकार ईश्वर के उपासक या किसी भागवत आदर्श के भक्त, द्वैतवादी या एकेश्वरवादी सभी पन्थों के मूल सिद्धान्तों का अन्तर्भाव हो जाता है। विशिष्टाद्वैत स्वरूप में उन सब पन्थों का समावेश हो जाता है जो अन्तःस्थ और दूरस्थ विशिष्ट परमेश्वर को मानते हैं। वेदान्त का अद्वैत स्वरूप सबसे अधिक महत्वपूर्ण और गम्भीर है। वेदान्त का सिद्धान्त विलक्षण रूप से विश्वधर्म को आत्मसात करता है, यह किसी व्यक्ति के द्वारा नहीं प्रवर्तित हुआ है। जो धर्म या दर्शन किसी व्यक्ति के चलाए हुए होते हैं वे विश्वधर्म के लक्षणों से युक्त नहीं हो सकते। वेदान्त प्रतिपादित सैद्धान्तिक धर्म दर्शन में किसी प्रकार की कट्टरता नहीं है। वेदान्त के अध्ययन से यह सिद्ध हो जाता है कि इस विश्वधर्म में पूर्व और पश्चिम दोनों ओर के सबसे बड़े भौतिक विज्ञान वेत्ताओं और तत्त्ववेत्ताओं के चरम सिद्धान्त भी समाहित हैं। अनन्त विस्तार प्राप्त इस अखिल विश्व में जिसमें हम रहते हैं उसके दो स्वरूप अनुभूत होते हैं एक बहिर्जगत् और दूसरा अन्तर्जगत। इसी तरह चेतनाचेतनात्मक दो ही पदार्थ हैं। अचेतन से सम्बद्ध विचारशास्त्र को

"विज्ञान" कहते हैं और चेतन सम्बन्धी निर्णय शास्त्र को दर्शन कहते हैं। दर्शन के प्रमुखतः दो विभाग हैं वैदिक और अवैदिक। इनमें से प्रत्येक के दो भेद हैं ईश्वरवादी और अनीश्वरवादी। इन दर्शनों में जो ईश्वरवादी वैदिक दर्शन हैं, उनमें अनेक कारणों से "उत्तर मीमांसा" नामक वेदान्त दर्शन ही सर्वप्रधान है सर्वतोभावेन ब्रह्मतत्वोपपादन ही इसका मुख्य उद्देश्य है।

वेदान्त शब्द समासान्त है। यह "वेद और अन्त" इन दो शब्दों के मेल से बना है। जिसका अभिप्राय है वेदों का मूल या अन्तिम भाग। विद्वानों ने वैदिक साहित्य को दो भागों में बाँटा है। प्रथम भाग का नाम है ' कर्मकाण्ड'अर्थात् जो मनुष्यों के कर्तव्य एवं कर्म का निरूपण करता है तथा दूसरे भाग का नाम है 'ज्ञान काण्ड' इसमें ज्ञान ही मुक्ति के मार्ग के रूप में प्रतिपादित है। इसलिए वही श्रेयस्कर है, वेदों में याज्ञिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन भी किया गया है। वेदों के मन्त्रभाग और ब्राहमण ग्रन्थों के वे भाग जिनका सम्बन्ध यज्ञों से है 'कर्मकाण्ड' भाग कहलाते हैं, तथा उपनिषद् जिनका सम्बन्ध ब्राह्मण ग्रन्थों से है 'ज्ञानकाण्ड' कहलाते हैं।

वाच्यार्थ में कहा जाता है कि जहाँ वेदों का अन्त हो वह वेदान्त है ' वेदस्य अन्तः वेदान्तः।' दूसरी व्युत्पत्ति की दृष्टि से ' वेदस्य ज्ञानस्य अन्तः यस्मिन्' के अनुसार यह परिभाषा परिलक्षित होती है कि जिस शास्त्र में ज्ञान का अन्त अर्थात् सम्पूर्णता हो वह वेदान्त कहलाता है। परब्रह्म परमात्मा का ज्ञान ही वास्तविक ज्ञान है, अतः वेदान्त शास्त्र से ब्रह्मज्ञान या ब्रह्मविद्या का बोध होता है। 'ब्रह्मण विद्या ब्रह्मविद्या' अर्थात ब्रह्म की विद्या ही ब्रह्म विद्या है।

वेदान्त शब्द का अर्थ परिवर्तित होता रहा है। अन्त शब्द का अर्थ क्रमशः तात्पर्य, मूल सिद्धान्त तथा आन्तरिक अभिप्राय से भी रहा है। उपनिषदों में जिन ऋषियों के मत वर्णित हैं उनमें अन्त शब्द का प्रयोग इसी अर्थ किया गया है। वेद भाग होने से वेदान्त शब्द से 'श्रुति' समझनी चाहिए। वेदान्त,श्रुति तथा उपनिषद् एकार्थक हैं। ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति के प्रतिपादक तीन ग्रन्थ माने जाते हैं यथा उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र और भगवद्गीता। इन्हें प्रस्थानत्रयी के नाम से भी जाना जाता है। इनमें से उपनिषद् तो अपौरुषेय वेद का ही भाग है। दूसरा ब्रह्मसूत्र वेदव्यास का बनाया हुआ वेदान्त का सर्वोत्तम ग्रन्थ है, तीसरी भगवद्गीता जिसमें भी ब्रह्मविद्या का उपादेय उपदेश दिया हुआ है। कहा जाता है कि वेदान्त का प्रणयन उन लोगों के लिए किया गया है जिन्हें वेद के अध्ययन से विरत रखा गया था।

वेदों के कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड और ज्ञानकाण्ड इन तीनों में से प्रत्येक के अन्तर्गत अनेक मार्ग हैं। निष्काम कर्मयोग, योगक्रिया का अभ्यास, वैदिक कर्मानुष्ठान, इत्यादि ये सब वैदिक कर्मकाण्ड के अन्तर्गत आते हैं। नाम जप, कीर्तन, स्मरण, अर्चन, वन्दन, सेवाशरण, आदि जितने भक्ति के मार्ग हैं वे सब उपासना के अन्तर्गत आते हैं। प्रकृति और पुरुष के विचार द्वारा प्रकृति की नित्यता और सत्यता का जो ज्ञान है, उसे ज्ञानकाण्ड कहा जाता है। वेदान्त का प्रधान सम्बन्ध ज्ञानकाण्ड से है।

भारत की वैदिक शिक्षा सबसे उन्नत ओर सबसे पुरातन है। वेद अपौरुषेय हैं, वेद के

प्रधानतः दो भाग हैं मन्त्र भाग एवं ब्राह्मण भाग। धर्म सूत्रकार भगवान आपस्तम्ब ऋषि ने कहा है–"मन्त्र ब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्" अर्थात् मन्त्र भाग और ब्राह्मण भाग दोनों ही वेद कहे जाते हैं। मन्त्र भाग में यज्ञदानादि कर्मकाण्ड द्वारा लौकिक एवं पारलौकिक सुख की प्राप्ति का विशेष रूप से वर्णन किया गया है। ब्राह्मण भाग के एक अंश को ही वेदान्त भी कहते हैं। जितने उपनिषद हैं वे सभी वेदान्त कहे जाते हैं। उपनिषद शब्द उप-नि-पूर्वक'सद्' धातु से 'क्विप्' प्रत्यय लगाकर बनता है। 'उप' का अर्थ समीप है, 'नि' का अर्थ निः शेषरूपेण और 'सद्'धातु स्थिति, विनाश,गति और अवसाद अर्थ में प्रयुक्त होती है। अतएव उपनिषद् का धात्वर्थ होता है शीघ्र ही पूर्ण रूप से गुरु के समीप बैठकर अज्ञान का नाशकर ज्ञानरूप ब्रह्म की प्राप्ति का शास्त्र। अर्थात् ब्रह्म में स्थिति की विद्या। इन उपनिषदों में जो कुछ विरोधाभास है उन्हें दूर करने के लिए भगवान बादरायण(वेदव्यास) जी ने ब्रह्मसूत्र का निर्माण किया, जिसे उत्तर मीमांसा भी कहते हैं। बादरायण, बद्री-नारायण अर्थात् बद्रीनारायण से बना है, जो कि एक प्रसिद्ध तीर्थ है। कहा जाता है कि यहीं भगवान् श्री कृष्ण ने हिमसाधना की थी और व्यास जी ने ग्रन्थों की रचना की थी। वेदों का भाग करने के कारण ही उन्हें वेदव्यास भी कहते हैं, इनका पूरानाम कृष्ण द्वैपायन व्यास था। उपनिषदों का सार समझने के लिए ही भगवान श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवद् गीता को प्रकट किया। ये उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र, और श्रीमद्भगवद्गीता वेदान्त के प्राचीन ग्रन्थ माने जाते हैं।

उपनिषदों के ऋषियों ने जिस ज्ञान का प्रवर्तन किया है, वह एक उच्च कोटि का आध्याात्मिक और तात्विक उपदेश है। उपनिषद् वेद से बहिर्भूत नहीं है, बल्कि श्रुति (उपनिषद्) और वेद पर्यायवाची शब्द हैं।[1] वैदिक ज्ञान का परम विकास उपनिषदों में ही हुआ है। उपनिषदों ने तत्व की गवेषणा की है। सत् चित् और आनन्द के स्वरूप को जानने का प्रयत्न किया है। औपनिषदिक ऋषि अपनी गवेषणाओं के परिणाम स्वरूप जिस ज्ञानके उच्चतम शिखर तक पहुँचे, वह 'ब्रह्म' और 'आत्मा' की एकता सम्बन्धी ज्ञान ही है। आत्मदर्शन ही उपनिषदों का अन्तिम उपदेश है। ऋषियों ने मन्त्रों का साक्षात्कार किया था। इसलिए उन्होंने जो कुछ अनुभूत किया देखा वही लिखा है। शास्त्रों में उन्हें मन्त्र द्रष्टा कहा गया है।[2]

गीता एक समग्र दर्शन है। यह वस्तुतः कामधेनु है। भगवान् श्रीकृष्ण की यह वाड०मयी मूर्ति है। गीता के ज्ञान में कर्म और भक्ति का समन्वय है। भगवान् श्रीकृष्ण का यह कथन कि 'जो लोग अनन्य भाव से मेरा चिन्तन करते हुए मुझे भजते हैं, उन सदा मुझमें रत रहने वालों के योगक्षेम का भार मैं उठाता हूँ।" यह गीता में भक्ति योग के दर्शन का मुख्य आश्वासन है। गीता एक समन्वयात्मक दर्शन है। कर्म, उपासना और ज्ञान तीनों का त्रित्व उसमें अनुस्यूत है और यह मानवमात्र के कल्याण की त्रिवेणी है।

---

1. ऋषयो मन्त्र द्रष्टारः।। (शत्० ब्रा०)
2. श्रुतिस्तु वेदों विज्ञेयो।।मनुस्मृति 2/20।।

उपनिषदों के दर्शन को एक समन्वित रूप देने का प्रयत्न ब्रह्मसूत्र में किया गया है। ब्रह्मसूत्र का ही दूसरा नाम शारीरिक सूत्र या वेदान्त सूत्र भी है। शारीरिक शब्द का अर्थ है शरीर में रहने वाला जीव। 'शरीरमेव शरीरकम्।'।[1] इस प्रकार ब्रह्मसूत्र जीव शास्त्र या आत्मशास्त्र है। ब्रह्मसूत्र में परब्रह्म के स्वरूप का सांगोपांग निरूपण किया गया है। यह वेद के चरम सिद्धान्त का निदर्शन कराता है। वेदान्त दर्शन उपनिषद्, गीता एवं ब्रहमसूत्र इन तीनों का त्रित्व है। यह भारतीय विचार-धारा की सर्वोत्तम उपज है। इसे भारत का प्रतिनिधि राष्ट्रीय दर्शन कह सकते हैं। वेदान्त दर्शन को सभी दर्शनों में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। कहा गया है कि 'वेदान्त दर्शनं सर्वदर्शनचूड़ामणिः।''

वेदान्त में उन सभी अच्छी बातों का समावेश है, जो सृष्टि में कहीं भी विद्यमान हैं। उसकी दृष्टि बहुत व्यापक है। यदि वेदान्त के मूल सिद्धान्त को मानकर शिक्षा का आयोजन किया जाय और समाज की व्यवस्था की जाय तो मनुष्य जीवन का गाम्भीर्य और महत्व सहस्र गुणा बढ़ जाएगा। वेदान्त का अचिन्त्यानन्त 'एकं ब्रह्म' वही है जो इमर्सन का 'ओवरसोल' या परमात्मा है, प्लेटो का 'गुड' शिव, स्पिनोजा का सबस्टांसिया (सार तत्व) काण्ट का परात्पर आत्म सत्ता,शोपेनहोर का 'विल' (महाशक्ति) हर्बर्ट स्पेन्सर का अज्ञात और अज्ञेय, अर्नेस्ट हेकेल का 'सब्सटैन्स' (सत्) जड़वादियों का जड़पदार्थ या प्रकृति और आध्यात्मवादियों का विश्वात्मा भी वही है। इसी लिए प्रो० मैक्समूलर ने कहा था कि वेदान्त सब दर्शनों से अधिक गम्भीर दर्शन है। यह सब धर्मो की अपेक्षा अधिक दिलासा देने वाला है। उन्हीं का यह भी कथन है कि 'हमारे हेराक्लिटस, प्लेटो, काण्ट या हेगेल समेत समस्त तत्ववेत्ताओं में कोई भी ऐसा तत्ववेत्ता नहीं हुआ जिसने ऐसी मीनार खड़ी की हो, जिसे तूफान या बिजली का कोई भय न हों जहाँ एक बार ऊपर चढ़ने के लिए एक कदम रखा और जहाँ यह बात समझ में आ गयी कि मूल में एक के सिवा ओर कोई दूसरा नहीं रह सकता, फिर उस एक को चाहे आत्मा कहिए या ब्रह्म वहाँ आगे पत्थर पर पत्थर रक्खा पक्का रास्ता बराबर मिलता चलेगा शोपेनहोर ने वेदान्त के बारे में कहा है कि 'यह मेरे जीवन की दिलासा है, यह मेरी मृत्यु का दिलासा होगा।' मूसा, जरथुस्त्र, कनफ्यूशियस, लाओत्से, बुद्ध, ईसा, मुहम्मद, शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, चैतन्य, नानक, और रामकृष्ण परमहंस जैसे विभूति सम्पन्न महापुरुषों ओर अवतारों की जो जो शिक्षाएँ है, सब वेदान्त में अन्तर्भूत हैं। मनुष्य जाति के उद्धार के लिए, आगे जो आएँगे उनके लिए भी इसमें स्थान खाली है।

वेदान्त पक्षपात रहित न्यायाधीश के सामन सभी धर्मो को, सभी राष्ट्रों के आध्यात्मिक आचार-विचारों के वृहत् विकास में अपने अपने स्थान में बैठाता है। इसका अपना कोई प्रवर्तक न

---

1. शरीरेभवम् शरीरेण व्यज्यते, इति शरीरम्, शरीरवान् ब्रह्म, इस प्रकार भी व्याख्या की जाती है।

होने से इसके आश्रय स्थानीय, वे सनातन आध्यात्मिक नियम हैं, जिन्हें सब देशों और कालों के ऋषियों ने ढूँढ निकाला है और जो संसार के विभिन्न ग्रन्थों में वर्णित हैं। आध्यात्मिक नियम, प्रकृति के नियमों की तरह सर्वत्र एक से हैं इसलिए सब देशों के धर्मग्रन्थों में उनका व्याप्त होना स्वाभाविक ही है।



वेदान्त दर्शन की शाखाएँ

वेदान्त के आधार ग्रन्थ उपनिषद्,ब्रह्मसूत्र एवं श्रीमद्भगवद्गीता हैं। वेदान्त का तात्पर्य उपनिषदों से है। उपनिषद अनेक हैं, और उनके सिद्धान्तों में भी आपाततः विरोध प्रतीत होता है। इन विरोधों के परिहारार्थ महर्षि बादरायण ने जिन सूत्रों की रचना की है, उन्हें 'ब्रह्मसूत्र'के नाम से जाना जाता है। ब्रह्मसूत्र पाणिनि से भी पूर्व की रचना है। क्योंकि उन्होंने'पाराशर्य शिलालिभ्यां भिक्षुसूत्रों का निर्देश किया है, वे इन सूत्रों से भिन्न प्रतीत नहीं होते । श्रीधर स्वामी की सम्मति में "ब्रह्मसूत्र पदैष्वै हेतु श्रीमद्भिर्विनिश्चितैः" (13/4) इस पद्यांश में गीता ब्रह्मसूत्रों का ही निर्देश करती है। अतः इन सूत्रों का निर्माण काल विक्रम पूर्व षष्ठ शतक के लगभग है।[1]

ब्रह्मसूत्र- ब्रह्मसूत्र में चार अध्याय हैं। पहले अध्याय का नाम समन्वय है, दूसरे का नाम अविरोध तीसरे का नाम साधन तथा चौथे अध्याय का नाम फल है। प्रत्येक अध्याय चार चार पादों में विभक्त है, और पाद अधिकरण में विभक्त हैं । इन आधिकरणों की संख्या विभिन्न भाष्यकारों के अनुसार 'ब्रह्मसूत्र' की अधिकरण संख्या 191, बलदेव भाष्य के अनुसार 198,श्री कण्ठीय भाष्य के अनुसार 182, रामानुज भाष्य के अनुसार 156, निम्बार्क भाष्य 151, बल्लभ अणुभाष्य के अनुसार 162, और मध्वभाष्य के अनुसार 223 है। भास्कराचार्य और विज्ञान भिक्षु ने अधिकरणों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया है। ब्रह्मसूत्र में लगभग 550 सूत्र हैं। किन्तु विभिन्न भाष्यकारों आधार्यो के भाष्यों में सूत्रों की संख्या में साम्य नहीं है, किन्ही में कम तथा किन्हीं में अधिक है जो निम्न लिखित तालिका से स्पष्ट है। सूत्रों के इस संख्या भेद का कारण वर्गीकरण की असमानता है।

शंकर	रामानुज	बल्लभ	भास्कर	मध्व	निम्बर्क	विज्ञानभिक्षु	श्रीकण्ठ	बलदेव
555	554	555	546	562	549	556	545	556

भाष्यकार- ब्रह्मसूत्र के भाष्यकारों के आधार पर ही वेदान्त दर्शन की शाखाएँ खड़ी हुई। इसके प्रमुख भाष्यकार हुए शंकराचार्य, रामानुजाचार्य,बल्लभाचार्य, निम्बार्काचार्य और मध्वाचार्य। यहाँ ब्रह्मसूत्र के भाष्यकारों के नाम उनके द्वारा कृत भाष्य तथा काल एवं उनके द्वारा प्रवर्तित सम्प्रदाय (मत) का विवरण दिया जा रहा है।[2]

नाम	समय	भाष्य	मत
1. शंकराचार्य	600 ई०.	शारीरकभाष्य	अद्वैत
2. भाष्कराचार्य	1000 ई०	भास्करभाष्य	भेदाभेद

1. इन ब्रह्मसूत्रों की ही व्याख्या करके कालान्तर में वेदान्त के नए-नए सम्प्रदाय खड़े हुए, इन्हें ही वेदान्त दर्शन की शाखा कहा जाता है।
2. आर्य संस्कृति के आधार ग्रन्थ-महामहोपाध्याय आचार्य बलदेव उपाध्याय पृष्ठ 230।

3. रामानुजाचार्य	1140 ई०	श्रीभाष्य	विशिष्टाद्वैत
4. मध्वाचार्य	1238 ई०	पूर्णप्रज्ञभाष्य	द्वैत
5. निम्बार्काचार्य	1240 ई०	वेदान्त पारिजात भाष्य	द्वैताद्वैत
6. श्रीकण्ठाचार्य	1270 ई०	शैवभाष्य	शैवविशिष्टाद्वैत
7. श्रीपतिआचार्य	1400 ई०	श्रीकरभाष्य	वीरशैवविशिष्टाद्वैत
8. वल्लभाचार्य	1500 ई०	अणुभाष्य	शुद्धाद्वैत
9. विज्ञानभिक्षु	1600 ई०	विज्ञानामृतभाष्य	अविभागाद्वैत
१०.बलदेव स्वामी	1725 ई०	गोविन्दभाष्य	अचिन्त्यभेदाभेद

उपरोक्त भाष्यों में आज शंकराचार्य का शारीरिक भाष्य, रामानुजाचार्य का श्री भाष्य और वल्लभाचार्य का अुणभाष्य ही अधिक प्रचलित है। प्रस्तुत ग्रन्थ का वर्ण्य विषय अद्वैतवेदान्त एवं उसकी आचार्य परम्परा वर्तमान शंकराचार्यो तक ही है।

अद्वैत वेदान्त

भारतीय षड्दर्शनों में अद्वैतवेदान्त का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। अद्वैतवाद की सत्ता भारतीय - दर्शन का प्राण है। वेदान्त दर्शन में सर्वतोभावेन ब्रह्मतत्त्वोपादपन ही मुख्य उद्देश्य है। इसमें दो मार्ग हैं, प्रथम है निर्विशेष ब्रह्मवाद जिसे अद्वैत वेदान्त के नाम से जाना जाता है और दूसरा है सविशेष ब्रह्मवाद। भारतवर्ष में अति प्राचीन काल से ही अद्वैतवाद प्रचलन में है। उपनिषदों में यत्र तत्र अद्वैत परक श्रुतियाँ दिखलायी पड़ती हैं। वेदों में तथा मन्त्र संहिताओं में भी यत्र तत्र प्रसंगतः अद्वैतमत का आभास होता है।[1] बौद्धमत में माध्यमिक तथा योगाचारानुयायी भी अद्वैतवादी ही थे। इसी कारण बुद्ध का एक नाम अद्वैतवादी भी पड़ा था। वैयाकरण शाक्त, शैव, ये सभी अद्वैतवाद को मानते थे। वेदान्त में भी अद्वैतवाद का वर्णन है। दिगम्बराचार्य, सामन्तभद्र ने अद्वैतपक्ष का उल्लेख किया है।[2]

वेदान्त सिद्धान्त में वेदकाल से लेकर आज तक अनेक प्रकार के सिद्धान्तों के रहते हुए भी अद्वैतवाद की प्रधानता सर्वसम्मत है। इसे विरोधी पक्ष भी स्वीकृत करते हैं। स्मृति,पुराण, दर्शन, इतिहास प्रभृति जितने भी विचार प्रवाह हैं सभी में वेदान्त सिद्धान्त से अद्वैतवाद ही लिया गया है। यहाँ तक कि हिन्दी के कवियों ने भी जहाँ कहीं वेदान्त सिद्धान्त का वर्णन किया है वहाँ उनका

---

1. ऋग्वेद 2/3/23/46/, 4/6/33/18, 3/6/14/5/230
2. अद्वैतैकान्तपक्षेऽपि दृष्टिभेदो विरुद्ध्यते।
   कारकाणां क्रिययोश्च नैकस्वस्मात् प्रजायते।। आप्त मीमांसा श्लोक 24।।

अद्वैतवाद से ही अभिप्राय है यथा सन्त शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास[1] महाकवि सूरदास[2] के ग्रन्थों में अद्वैतवाद की झलक मिलती है। गुरु ग्रन्थ साहब में भी अद्वैत वेदान्त की झलक हैं। ''जप आद सच्च जुगाद सच्च है भी सच्च, नानक होसी भी सच्च।'' गुरुग्रन्थ साहब में सिक्खों के नवम् गुरु श्री तेग बहादुर का विचार '' जगरचना सब झूठ है।'' तथा गुरु अर्जुन देव का वचन ''सभ नानक ब्रहम पसारो।'' अद्वैत वेदान्त के 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या का अनुवाद मात्र है। कबीर दास की समस्त रचनाओं में अद्वैतवेदान्त ही परिलक्षित होता है।[3]

यद्यपि अद्वैतवाद एवम् इनके सिद्धान्त को केवलाद्वैतवाद के नाम से भी अभिहित किया गया

---

1. भूमि परत भा ढाबर पानी। जनु जीवहिं माया लपटानी।। किष्किन्धा काण्ड ।।
लागे करन ब्रहम उपदेशा, अज अद्वैत अगुण हृदयेशा।
मन गोतीत अमल अविनाशी, निर्विकार, निरवधि सुखरासी।।''
निर्गुण,निराकार, निर्मोहा,नित्य निरन्जन सुख सन्दोहा,
प्रकृति पार प्रभु सब उरवासी ब्रहमनिरीह विरज अविनासी।''उत्तकाण्ड।।
सोइ जानहिं जेहि देहु जनाई, जानत तुम्हहि तुम्हहि होई जाई।।
2. जित देखौं तित श्याममयी है। स्याम कुंज बन, जमुना स्यामा, स्याम गगन घन घटा छाई है।।
श्रुति को अच्छर स्याम लिखिअत, दीप सिखा पर श्याम तई है।
नरदेवन की कौन कथा है, अलख ब्रह्म छवि श्याम मयी है।।
आदि सनातन एक अनुपम अविगत अल्प अहार
ओंकार आदिवेद असुरहन निर्गुण सगुण अपार।। सूरसागर।।
गोपी ग्वाल कान्ह दुई नाहिं ये कहुँ नेक न न्यारे।
ज्ञानी सदा एक रस जाने, तन के भेद भेद नहिं माने।
आत्मा सदा अजन्म अविनासी ताको देह मोह बड़ फाँसी''
त्रिगुणात्मक जानो सत रज तम ताको गुण मानो।
जड़ स्वरूप सब माया जानो ऐसो ज्ञान हृदय में आनो।''
इक माया इक ब्रह्म कहावत, सूर श्याम झगरो''
3. अवगति का कहूँ जाको गाँव न छाँव,
गुण विहन को पेखिए का कहिए तिस नाँव ।।''
जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाहिं।
सब अँधियारा मिट गया दीपक देखा माहि।।''
झूठ झूठ रहो उरझाई उलख जग लख्या न जाई।
साँच सोई जो थिर रहाई, उपजे विनसे झूठ थे जाई।।''
जल कुम्भ,कुम्भ में जल है, ऊपर नीचे पानी।
फूटा कुम्भ जल जलहिं समाना, इह तथ कथौ गियानी।।

है। शंकर अद्वैतवाद का मूल सिद्धान्त-'ब्रहम सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रहम', ही सत्य है। जगत् और जीव की द्वैतानुभूति का निराकण क़रके एक मात्र ब्रह्म का सत्य स्वीकार करना ही अद्वैतवाद है। वेदों में तीन प्रकार का अद्वैत सिद्धान्त माना गया है और आगे चलकर इन तीनों को विभिन्न दार्शनिकों ने विकसित किया है। बुद्ध विज्ञानद्वैत के समर्थक थे। भगवान शंकराचार्य ने सत्ताद्वैतवाद का स्थापन एवं श्रृंखलाबद्ध प्रतिपादन किया। भतृहरि ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'वाक्य पदीय' में शब्दाद्वैतवाद का प्रवर्तन किया।

भारतवर्ष के अनन्त कोटि विस्तार प्राप्त वाड०्मय रूप से जिन सिद्धान्तों का प्रतिपादन हुआ है उनका सारांश यह है कि केवल परमात्मा ही त्रिकालातीत सत्य है, मायामय विश्व क्षणभंगुर एवं मिथ्या है। विविध प्रकार के जीव भी एक तत्वमय घनीभूत परमात्मा या ब्रह्म ही के रूप में हैं। संसार में समस्त विवादों की जड़ में मैं और तुम के रूप में द्वैत ही है। ' मैं अरु तोर, तोर ते माया।' यदि यह भ्रम मिट जाय और द्वैत अद्वैत में परिवर्तित हो जाय तो विवाद ही समाप्त हो जाय। सब सर्वत्र ब्रह्ममय हो जाय।

पाश्चात्य विचारकों में भी अद्वैतवाद के ही समर्थक एचं प्रवर्तक मिलते हैं। सन्त जान के 'दिव्य सन्देश' में उनके पत्रों में और उनके अनुभवों के प्रमाण रूप में कई ऐसे वचन हैं, जो यह प्रकट करते हैं, तथा बहुत से ग्रीक और रोमन ऐतिहासिक लेख भी यह सिद्ध करते हैं कि, महात्मा ईसा ने भारतीय अद्वैत वेदान्त को फिलिस्तीन में ले जाकर उसका प्रचार किया था किन्तु कट्टर द्वैतवादी (अर्थात् कहने को एकेश्वरवादी और अन्दर से बहुसत्तावादी) यहूदी लोग इन धर्म विरुद्ध शिक्षाओं को सहन नहीं कर सके और उनके कट्टर शत्रु हो गए। जिसके परिणाम स्वरूप महात्मा ईशा को शूली दे दी गयी थी। कोई भी दुराग्रह रहित निष्पक्ष व्यक्ति जो महात्मा ईशा को अपना प्रभु स्वामी तथा त्राता मानता है न्यायतः द्वैत को (जिसके विरुद्ध वे लड़ते रहे) स्वीकार नहीं कर सकता और न अद्वैत कों (जिसके प्रचार में उन्होंने अपना बलिदान कर दिया था) अस्वीकार कर सकता है। इस्लाम के सम्बन्ध में मात्र इतना ही कहा जा सकता है कि मुसलमानों में केवल सूफियों ने ही इन आध्यात्मिक प्रश्नों पर विचार किया था और वे पूर्णतः अद्वैतवादी थे।

प्राचीन यूनान के प्लेटो से लेकर आधुनिक दार्शनिकों में स्वेडेनबर्ग, वर्ड्सबर्थ, ब्राउनिंग, कार्लाइल, इमर्सन, विशप, बर्कले, हेगेल, इमैन्युअल, काण्ट राल्फ, पिलकाक्स, प्रो० डायसन तक पाश्चात्य संसार के समस्त मनोविज्ञानी, तथा अध्यात्मज्ञानी भी जड़वादियों के द्वैतवाद के विरुद्ध भगवान् श्री शंकराचार्य के आदर्शवाद का समर्थन करते आए हैं। भगवान शंकराचार्य ने विशुद्ध अद्वैतवाद रूप परमसिद्धान्त को अदम्य साहस के साथ स्वीकार किया है। इस सम्बन्ध में हमें यह याद रखना चाहिए कि यदि भारतवर्ष और सब बातों में अधोगति को प्राप्त होकर भी प्रतिभाशाली

पाश्चात्य दार्शनिकों को अब भी मुग्ध कर सकता है, तो केवल शंकर के अद्वैत वेदान्त सिद्धान्त के द्वारा ही, जिसके सामने संसार के बड़े से बड़े विद्वान् विवश होकर श्रद्धा के साथ सिर झुकाते हैं। भारतवर्ष को इस अत्यन्त आश्चर्यकारी अथवा अतर्क्य ऐतिहासिक उपलब्धि के लिए इस अद्वैत सिद्धान्त को ही श्रेय देना चाहिए। अद्वैत और वेदान्त का अद्वैत ही एक ऐसा सिद्धान्त है जिसका युक्तिवाद भी समर्थन करता है।



अद्वैत वेदान्त की आचार्य परम्परा

अद्वैत वेदान्त की आचार्य परम्परा का यदि ऐतिहासिक एवं वैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन किया जाय तो उसको तीन भागों में विभक्त किया जाना अधिक युक्ति युक्त,पूर्ण एवं समीचीन होगा। पूर्व भाग में भगवान् शंकराचार्य के पूर्ववर्त्ती आचार्य द्वितीय भाग में भगवान् शंकराचार्य और तृतीय भाग में उत्तरवर्ती आचार्य एवं समस्त शंकर पीठों का वर्णन।

भगवान् आद्य शंकराचार्य के पूर्ववर्ती आचार्य

वेदान्त दर्शन भारतीय दर्शन का सम्राट् है और शंकर वेदान्त उसकी अमर पताका। वेदान्त दर्शन के विचारकों की परम्परा बहुत लम्बी है। ब्रह्मसूत्र वेदान्त का प्राचीनतम उपलब्ध ग्रन्थ है। यहाँ भगवान् आद्य शंकराचार्य के पूर्ववर्ती आचार्यों एवं उनकी कृतियों का संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है।

आचार्य बादरि-

ब्रह्मसूत्र[1] एवं मीमांसा सूत्र[2] दानों में ही आचार्य बादरि के मत का उल्लेख मिलता है। इससे प्रतीत होता है कि ये ब्रह्म सूत्रकार और मीमांसा सूत्रकार से प्राचीन थे। मीमांसा और वेदान्त दानों दर्शनों में सुरक्षित आचार्य बादरि के विचारों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि उनका दोनों दर्शन सम्प्रदायों पर समान अधिकार था और उनके विचारों का विद्वत्समाज में समादर था। उनके गहन गम्भीर विचार प्रामाणिक माने जाते थे।

आचार्य कार्ष्णाजिनि- आचार्य कार्ष्णाजिनि का काल आचार्य बादरि के बाद का है, इनके भी नाम एवं मत का उल्लेख ब्रहमसूत्र एवं मीमांसा सूत्र में हुआ है। आचार्य जैमिनि ने अपने पक्ष को सम्पुष्ट करने एवं अन्यों का खण्डन करने के लिए इनके सिद्धान्तों को उध्दृत किया है। ये प्रायः बादरिमत के ही समर्थक प्रतीत होते हैं।

आचार्य आत्रेय- आचार्य आत्रेय पूर्व मीमांसा के प्रकाण्ड पण्डित थे। यह जैमिनि और बादरायण से पूर्व थे। इनकी मान्यता थी कि यजमान को ही यज्ञ के अंगभूत उपासना का फल प्राप्त होता है, ऋत्विक को नहीं। अतएव सारी उपासनाएँ स्वयं यजमान को करनी चाहिए, पुरोहित द्वारा नहीं करानी चाहिए। यद्यपि उनके इस विचार का व्यास देव ने औडुलोमि के मत द्वारा खण्डन किया है तथापि जैमिनि ने वेदान्त के आचार्य कार्ष्णाजिनि के मत का खण्डन करने के लिए सिद्धान्त रूप से आचार्य आत्रेय के मत का उल्लेख किया है।

---

1. ब्रह्मसूत्र 1/30; 3/1/11; 4/3/7; 4/4/10
2. मीमांसा सूत्र 2 3/1/3; 6/1/26; 8/3/6; 9/2/36

आचार्य औडुलोमि- आचार्य औडुलोमि विशुद्ध रूप से वेदान्त दर्शन के आचार्य थे ओर भेदाभेद वादी थे। इनकी मान्यता है कि संसार,दशा में जीव और ब्रह्म में भेद है, मुक्ति होने पर अभेद है। उन्होंने कहा कि चैतन्य ही आत्मा का स्वरूप है और इस कारण वह मुक्ति में भी चैतन्य मात्र को ही प्राप्त होता है। बादरायण ने औडुलोमि के मत को प्रमाणिक माना है

आचार्य आश्मरथ्य - आश्मरथ्य वेदान्त के आचार्य थे और जैमिनि तथा बादरायण के पूर्ववर्ती थे। इनके मत में विज्ञानात्मा और परमात्मा का परस्पर भेदाभेद सम्बन्ध है। इनका कथन है कि परमेश्वर अनन्त होने पर भी उपासक के ऊपर अनुग्रह करने के लिए प्रदेश मात्र स्थान में आविर्भूत होते हैं। वाचस्पति मिश्र ने इन्हें विशिष्टाद्वैतवादी कहा है।

आचार्य काशकृत्स्न- यह भी बादरायण के पूर्ववर्ती आचार्य थे। बादरायण ने इनके मत का समर्थन किया है। ये अद्वैतवादी थे।

आचार्य जैमिनि- मीमांसा दर्शन के प्रसंग में आचार्य जैमिनि का सविस्तार उल्लेख किया गया है। मीमांसा दर्शन के सिद्धान्तों का ब्रह्मसूत्र में और ब्रह्मसूत्र के मत का मीमांसा दर्शन में खण्डन करने की चेष्टा की गयी है। इससे सिद्ध होता है कि यह दोनों समकालीन ग्रन्थ हैं। पुराणें के अनुसार यह सिद्ध होता है कि जैमिनि बादरायण के शिष्य थे। उनसे इन्होंने सामवेद एंव महाभारत की शिक्षा प्राप्त की थी। इन्होंने द्रोणपुत्रों से मार्कण्डेय पुराण भी सुना था। इनके पुत्र का नाम सुमन्तु तथा पौत्र का नाम सत्यवान् था। इन तीनों पिता पुत्रों ने वेद की एक-एक संहिता बनायी है। इनका अध्ययन हिरण्यनाभ पेष्याञ्जि और अवन्त्य नाम के तीन शिष्यों ने किया था।

आचार्य काश्यप- प्राचीन काल में काश्यप का भी एक सूत्र ग्रन्थ था। सूत्रकार शाण्डिल्य ने अपने सिद्धान्त के प्रतिष्ठापन में काश्यप तथा बादरायण के मत का उल्लेख किया है। उनपके अनुसार काश्यप भेदवादी और बादरायण अभेदवादी थे।

इन आचार्यों के अतिरिक्त असित,देवल, गर्ग, जैगीषव्य, पराशर, और भृगु प्रभृति ऋषियों के नाम भी प्राचीन वेदान्ताचार्यों के रूप में मिलते हैं। किन्तु इन सबकी कोई उल्लेखनीय कृति उपलब्ध नहीं है। जिसके आधार पर इनके मतों को प्रतिष्ठापित किया जा सके।

भगवान् वेदव्यास- वेदान्त दर्शन के प्रणेता भगवान वेदव्यास हैं। इन्हें माठर, द्वैपायन, पाराशर्य कानीन, बादरायण व्यास, कृष्ण द्वैपायन, सत्यभारत पाराशरि, सात्यक्त, सत्यवती सुत, सत्यरत, प्रभृति नामों से अभिहित किया जाता है। इन्होंने वेदों का विभाग किया था तथा महाभारत, अष्टादशमहापुराण और अध्यात्म रामायण की रचना की थी। योग वाशिष्ठ महाभारत से इनके बारे में कुछ पता चलता है। उसके अनुसार इनके पिता पाराशर मुनि थे तथा यह मत्स्यगन्धा या सत्यवती

नामक कन्या के गर्भ से उत्पन्न हुए थे।[1]

इनका नाम कृष्ण द्वैपायन व्यास था। इनका कृष्ण नाम इसलिए पड़ा क्योंकि उनका रंग काला (कृष्ण) था, तथा द्वैपायन इसलिए क्योंकि उनका जन्म यमुना नदी के एक द्वीप में हुआ था। उन्होंने वेदों को चार भागों में विभाजित (व्यवस्थित)किया इसलिए वे व्यास कहलाए।[2] व्युत्पत्ति की दृष्टि से 'अस्' धातु में 'वि' उपसर्ग लगाने से 'व्यास' शब्द की सिद्धि होती है। अस् का अर्थ है फेंकना। व्यास जी को विष्णु,ब्रहमा तथा शिव का अवतार कहा गया है।[3] ऐसा विश्वास किया जाता है कि जब कभी धर्म की हानि देखी गयी तब तब मानवों के कल्याण के लिए व्यास ने जन्म लिया। कूर्म,वायु ओर विष्णु पुराण में 28 व्यासों का उल्लेख मिलता है, जिनके नाम हैं-स्वयम्भू, प्रजापति या मनु, उशना, वृहस्पति सवितृ, मृत्यु या यम, इन्द्र, वशिष्ठ, सारस्वत, त्रिधामन, ऋषभ या त्रिवृषन, सुतेजा या भारद्वाज अन्तरिक्ष, धर्म वपृवन् या सुचक्षु, त्रय्यारुणि धनञ्जय कृतञ्जय, ऋतञ्जय, गौतम, उत्तम, वाचश्रवस या वेण या नारायण, सोममुख्यायन या तृणबिन्दु, ऋक्ष या वाल्मीकि, शक्ति, पाराशर, जातुकर्ण और कृष्ण द्वैपायन। यह सभी नाम अधिकांशतः ब्रह्मा जी के भी हैं, इसीलिए वेदव्यास को ब्रह्मा जी का साक्षात् अवतार मानते हैं। शास्त्रों ने इन्हें चिरञ्जीवी कहा है।[4]

सामविधान ब्राह्मण में एक प्राचीन परम्परा की ओर निर्देश है। जिसके अनुसार जैमिनि पाराशर्य व्यासके शिष्य कहे गए हैं।[5] महाभारत में सुमन्तु, जैमिनि, वैशम्पायन एवं पैल को शुक (व्यास के पुत्र) के साथ व्यास का शिष्य कहा गया है।[6] उन्होंने चारों वेदों में चार शिष्यों को प्रशिक्षित किया। यथा पैल, वैशम्पायन, जैमिनि, एवं सुमन्तु जो क्रमशः ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद में पारंगत हुए। उनके पाँचवें शिष्य थे सूतरोमहर्षण जिन्हें इतिहास, पुराण में प्रशिक्षित किया गया था। सूत के पुत्र थे सौति जिन्होंने महाभारत का पाठ शौनक एवं अन्य मुनियों को नैमिषारण्य में सुनाया था।

1. अस्मिन्युगे कृते। व्यासःपाराशर्यः। द्वैपायन इति ख्यातो विष्णोरंश प्रकीर्तितः। ब्रह्मणा चोदितः सोस्मिन्विदं व्यङ्तुं प्रचक्रमे। अथ शिष्यान्स जग्राह चतुरोवेद कारणात्।। ऋग्वेद श्रावकं पैलं जग्राह विधिवद् द्विजम्। यजुर्वेद प्रवक्तारं वैशम्पायनमेव च।। जैमिनिं सामवेदार्थं श्रावकं सोन्वपद्यत। तथैवाथर्ववेदस्य सुमन्तुमृषिसत्तमम्।। इतिहास पुराणस्य वक्तारं सम्यमेवहि। मां चैव प्रतिजग्राह भगवानीश्वरः प्रभुः।। वायु 60/11-16।ब्रह्माण्ड 2/34/11-16।विष्णु3/417/10। कूर्म 1/52/10-15 तथा 1/51/48।विशणुधर्मोत्तर 1/74।पद्म 5/43। भागवत 1/4/14-25/12/6/49-80।।

2. महाभारत ने पुराणों के वक्तव्यों को मान लिया है। "विव्यासैकं चतुर्धा यो वेदं वेदविदांवरः।। महाभारत आदि पर्व 60/2 एवं 5।। यो व्यस्य वेदांश्चतुरस्तपसा भगवानृषिः। लोके व्यासत्वमापेदे काष्ण्र्यात्कृष्णत्वमेव च।। आदि पर्व 105/15।।

3. नारदीय 1/1/18 ने भी व्यास को नारायण कहा है। वायु 77/74-75 में व्यास जी को ब्रह्मा काकूर्म 2/11/136 में शिव का अवतार कहा गया है।

4. अश्वात्थामा बलिर्व्यासो, हनुमाँश्च विभीषणः।
कृपाचार्यो,परशुरामश्च सप्तैते चिरञ्जीविनः।।

5. धर्म शास्त्र का इतिहास, पी.वी. काणे भाग 5 पृष्ठ 93

6. महाभारत, सभापर्व 4/11 शान्ति पर्व 328/26-27 तथा 350/11-12।।

संस्कृत साहित्य में आदि कवि वाल्मीकि के बाद वेदव्यास ही सर्वश्रेष्ठ कवि हुए हैं। इनके द्वारा लिखित ग्रन्थ' आर्ष ग्रन्थ' नाम से प्रसिद्ध हैं। उनके बारे में कहा जाता है कि 'यदि उनके चार हाथ होते,तो वे साक्षात् भगवान विष्णु, यदि चार मुख होते तो ब्रह्मा तथा यदि त्रिनेत्र होते तो साक्षात् शिव माने जाते।[1] उनकी विद्वता की कीर्ति दिगदिगन्त में व्याप्त थी। इस सम्बन्ध में पारसियों की एक प्रसिद्ध धार्मिक पुस्तक'दासतीर' का यह वाक्य उल्लेखनीय है कि -''व्यास नाम का एक ब्राह्मण हिन्द से आया, जिसके समान कोई पण्डित नहीं था।'' तभी तों कहा गया है कि 'व्यासोच्छिष्टमिदं जगत्।'' यह सारा विश्व, विश्व की सम्पूर्ण विद्या व्यास जी की जूठन है। यही कारण है कि पुराणों से लेकर पश्चात्वर्ती लेखकों ने सभी ने वेद व्यास की स्तुति की है।[2] वेणी संहार नाटक के रचयिता पं. नारायण भट्टकृत वेदव्यास की स्तुति मे हमें कोई अतिशयोक्ति की गंध नहीं आती है।[3] भगवान् व्यास के विषय में उनकी चौथी पीढी की शिष्य परम्परा में प्राप्त आदि शंकराचार्य ने कहा है कि 'भगवान् व्यास की सार्मथ्य हम लोगों से सर्वथा विलक्षण और बहुत अधिक बढ़ी चढ़ी थी। वे सभी देवताओं तथा ऋषियों के साथ साक्षात् व्यवहार करते थे। उन्हें प्रतिस्मृति विद्या और अनेक ऐसी विद्याएँ प्राप्त थीं, जिनसे महाभारत में वीरगति को प्राप्त हूए सभी योद्धाओं को जीवित कर उनके परिवार जनों के साथ सम्भाषण पूर्वक एक रात्रि का पुनः संयोग कराना उनके लिए अत्यन्त साधारण क्रिया थी।''

अद्वैत वेदान्त की आचार्य परम्परा में कतिपय आचार्य और हुए हैं जिनमें से कुछ के द्वारा लिखित कतिपय ग्रन्थ भी हैं,किन्तु इनके जीवन वृत्तों ओर सिद्धान्तों पर प्रकाश डालने वाली सामग्री का अभाव है, लेकिन इतना तो निश्चित ही है कि ये सब बादरायण के बाद हुए हैं। इनके नाम हैं भर्तृ प्रपंच, ब्रह्मनन्दी, टंक, गुहदेव, भारुचि, कपर्दी,उपवर्ष, बोधायन, भर्तृहरि, सुन्दरपाण्डय, द्रबिडाचार्य और ब्रह्मदत्त। इन आचार्यों में से किसी ने गीता के ऊपर भाष्य की रचना की थी और किसी ने ब्रह्मसूत्र और गीता दोनों पर किन्हीं किन्हीं आचार्यों की उपनिषदों पर भी व्याख्या प्रचलित थी। इनके इतिरिक्त कतिपय अन्य विद्वानों एवं आचार्यो का नाम भी ज्ञात होता है जिन्होंने भी वेदान्त सूत्र पर भाष्य लिखे हैं, किन्तु इनके जीवन वृत्त,दर्शन पर प्रकाश डालने वाली कोई प्रामाणिक सामग्री नहीं मिलती। इन आचार्यों के नाम हैं, भारती विजय, सच्चिदानन्द, ब्रह्मघोष, शतानन्द, उदवर्त, विजय,

---

1. अचतुर्वदनो ब्रहमा द्विवाहुरपरो हरिः।
   अभाललोचनः शंभुर्भगवान् वादरायणः।।
2. पारशर्यं परम पुरुषं विश्ववेदैकयोनिं,
   विद्याधारं विमलमनसं वेदवेदान्तवेद्यम्। शश्वछान्तं शमित विषयं शुद्धबुद्धिं विशालं,
   वेदव्यासं विमलयशसं सर्वदाहं नमामि।।पद्मपुराण उ० खं. 219/42।
3. श्रवणाञ्जलिपुटपेयं विरचितवान् भारताख्यमृतं यः।
   तमहमरागमकृष्णं, कृष्णद्वैपायनं वन्दे।।

रुद्रभट्ट, वामन, यादवप्रकाश, रामानुज, भास्कर, पिशाच, वृत्तिकार, विजयभट्ट, विष्णुकान्त वादीन्द्र और मध्वदास।

इन पुरातन ऋषियों एवं आचार्यों के नामोल्लेख के बाद अद्वैत वेदान्त की आचार्य परम्परा में भगवान् शंकराचार्य के दादा गुरु आचार्य गौडपाद का नाम सर्वप्रमुखता से लिया जाता है।

श्री गौडपादाचार्य- अद्वैत वेदान्त की आचार्य परम्परा में श्री गौडपादाचार्य का नाम अत्यन्त प्रतिष्ठित है। इनके सम्मान का एक प्रमुख कारण यह भी है कि अद्वैत विद्वान् भगवान् शंकराचार्य इनके प्रशिष्य थे। यद्यपि महामहोपाध्याय पं. गोपीनाथ कविराज ने अपने एक लेख में यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि भगवान् शंकराचार्य श्री गौडपादाचार्य के प्रशिष्य नहीं थे।[1] किन्तु अब तक के शोध एवं निष्कर्ष के आधार पर यह कहा जा सकता है कि भगवान् शंकराचार्य ने जिस अद्वैत दर्शन का प्रतिपादन किया है, उसका सीधा सम्बन्ध श्री गौडपादाचार्य के विचारों से है। श्री गौडपादाचार्य को श्री शुकदेव जी महाराज का शिष्य बताया जाता है। श्री शुकदेव जी वेदव्यास के पुत्र थे। श्री शंकराचार्य के जीवन चरित से इतना तो पता चलता है कि श्री गौडपादाचार्य के साथ उनकी भेंट हुई थी। परन्तु इसके अन्य प्रमाण नहीं मिलते।

श्री गौडपादाचार्य के जीवनवृत्त के विषय में कोई विशेष जानकारी नहीं मिलती। शंकराचार्य जी के शिष्य सुरेश्वराचार्य के "नैष्कमर्य सिद्धि" नामक ग्रन्थ से मात्र इतना ही पता चलता है कि वे गौडदेश के रहने वाले थे। इससे प्रतीत होता है कि इनका जन्म बंगाल प्रान्त के किसी स्थान में हुआ रहा होगा। तथा इनका काल ईसा से पूर्व द्वितीय शताब्दी का प्रथम भाग माना जाता है।[2]

श्रीगौडपादाचार्य के अद्वैत वेदान्त विषयक प्रमुख ग्रन्थ का नाम है "माण्डूक्योपनिषद्-कारिका।" भगवान् शंकराचार्य ने इस पर भाष्य लिखा है। परवर्ती आचार्यों ने इस कारिका को प्रमाणरूप से स्वीकार किया है। इस कारिका की मिताक्षरानामक टीका भी मिलती है। श्री गौडपादाचार्य विरचित सांख्य कारिका भाष्य भी मिलता है। उत्तरगीता भाष्य उनके द्वारा प्रणीत तीसरा ग्रन्थ है। उत्तरगीता महाभारत का ही एक अंश है।

आचार्य गौडपाद अद्वैत वेदान्त के प्रधान आचार्य थे,। उन्होंने जिन सिद्धान्तों को बीज के रूप में प्रस्फुटित किया, शंकराचार्य जी ने उसको और विस्तृत रूप से संसार के सामने रखा हैं श्री गौडपादाचार्य का दार्शनिक सिद्धान्त "अज्ञातवाद" के नाम से प्रसिद्ध है, जिसके अनुसार जगत् की उत्पत्ति नहीं हुई, अपितु एक चिद्घन सत्ता ही मोहवश प्रपंचवत् भास रही है। जिसका यह द्वैत दिखाई दे रहा है, सब मन की कल्पना है। क्योंकि मन के शून्य हो जाने के बाद सारी द्वैत भावनाएँ परमार्थ अद्वैत में बदल जाती हैं।[3]

1. कल्याण- वेदान्त विशेषांक, वर्ष 11 सन् 1936
2. कल्याण- वेदान्त विशेषांक वर्ष 11 सन् 1936
3. मनोदृश्यमिदं द्वैतमद्वैतं परमार्थतः।
   मनसो ह्यमनोभावे द्वैतं नैवोपलभ्यते।।

विद्वानों का यह भी अभिमत हे कि गोविन्दपादाचार्य ही पतञ्जलि थे। महर्षि पतञ्जलि ने ही महाभाष्य की रचना की थी। आचार्य भगवत्पाद लिखित अद्वैत सिद्धान्त से सम्बन्धित कोई ग्रन्थ नहीं मिलता।



शंकराचार्य और उनकी परम्परा

भगवान शंकराचार्य और उनकी परम्परा- वेदान्त दर्शन के अद्वैतवाद का प्रचार प्रसार यों तों भारत में बहुत प्राचीन काल से था, किन्तु इधर इसका सबसे अधिक प्रचार प्रसार भगवान् शंकराचार्य जी के द्वारा ही हुआ। जब सम्पूर्ण देश में सनातन धर्म का अवमूल्यन अधःपतन हो रहा था, बौद्ध धर्म का इतना प्राबल्य हो गया था कि चतुर्दिक बुद्धं शरणं गच्छामि, धम्मं शरणं गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि का निनाद एंव उद्घोष सुनायी दे रहा था, उस समय लोगों में एक ही प्रश्न कौंध रहा था' 'को वेदानुद्धरिष्यति।' इस भीषण झंझावात से सन्तप्त सभी देवता कैलाश पर्वत पर भगवान् शंकर की शरण में गए और सम्पूर्ण स्थिति निवेदित की। देवगणों की प्रार्थना स्वीकार करते हुए भगवान् शंकर ने कहा कि 'कुमार कार्तिकेय तुम वैदिक कर्म काण्ड के उद्धार के लिए भारत में अवतार लो, ब्रह्मा जी व इन्द्र तुम्हारी सहायता के लिए उत्पन्न होंगे। हम स्वयं अवतरित होंगे तथा आप अन्य देवतागण भी मनुष्य रूप धारण कर भारतवर्ष में जन्म लो।' इस प्रकार कुमार कार्तिकेय कुमारिल भट्ट बने। 'ब्रह्मदेव'-मण्डन मिश्र के रूप में आए। इन्द्र राजा सुधन्वा के रूप में प्रकट हुए। विष्णु भगवान् सनन्दन और शेषनाग पतंजलि के रूप में इस धरती पर आ गए। वायु बने हस्तामलक तथा वरुण ने चित्तसुख के रूप में जन्म लिया। वृहस्पति आनन्दगिरि और सरस्वती ने उभय भारती के रूप में जन्म लिया । अन्य देवता भी भगवान् शंकर के निर्देशानुसार इस पवित्र राष्ट्र में मानव रूप में उत्पन्न हुए और मण्डन मिश्र तथा कुमारिल भट्ट ने 'कर्मकाण्ड' का पुनरुद्धार किया। पतंजलि ने 'उपासना काण्ड' की रक्षा की और ज्ञानकाण्ड' का उद्धार करने के लिए स्वयं भगवान् शंकर आद्य श्री शंकराचार्य' के रूप में इस धरा पर अवतीर्ण हुए, और परम पावन भारत भूमि से नास्तिकवाद का उन्मूलन हो गया। भारतीय दर्शन के क्षेत्र में शंकराचार्य के महत्व की दिशा अत्यन्त व्यापक एवं सर्वतोमुखी है। शंकराचार्य दर्शन जगत् के सूर्य हैं और उन्होंने अपने आलोक से भारतीय दर्शन के भ्रान्त दर्शनिकों को एक उपयुक्त दिशा दी है। भारत से लेकर पश्चिमी विद्वानों तक ने शांकर दर्शन की प्रशंसा की हैं। पश्चिमी विद्वान् सर वार्ल्स इलियट वैदिक सिद्धान्त को स्थिरता, पूर्णता एवं गम्भीरता की दृष्टि से भारतीय दर्शन के क्षेत्र में प्रथम कोटि का मानते हैं।[1] डा० राधाकृष्णन् के

---

1. He----- in consistency throughness and profundiwty holds the first place in indian phillosophy.- Illiot; Hinduism & Budhism. vol.2 page 208,broad way, London.

अनुसार शंकराचार्य का दार्शनिक सिद्धान्त आध्यात्मिक, गाम्भीर्य एवं तार्किक शक्ति में अद्वितीय है।[1] डॉ० थीवो ने आचार्य के दार्शनिक सिद्धान्त की अत्यन्त प्रशंसा की है, उनके अनुसार शंकराचार्य के अद्वैत वेदान्त की तुलना,विचारों की निर्भीकता, गम्भीरता और सूक्ष्मता के क्षेत्र में न किसी शांकर सिद्धान्त के विरोधी वेदान्त सिद्धान्त से की जा सकती है, और न किसी अवेदान्तिक सिद्धान्त से।

अद्वैत वेदान्त के प्रसिद्ध विद्वान् मधुसूदन सरस्वती (16वीं शताब्दी) ने अपने ग्रन्थ सिद्धान्त बिन्दु के आरम्भ में भगवान् शंकराचार्य को भगवान् शंकर का अवतार मानकर उनकी वन्दना की है-

श्री शंकराचार्य नवावतारं।

विश्वेश्वरं विश्वगुरुं प्रणम्य।। सिद्धान्त बिन्दु पृष्ठ 3।। अच्युत ग्रन्थ माला काशी।।

इसके अतिरिक्त शंकर परवर्ती वाचस्पति मिश्र (9 वीं शताब्दी अमलानन्द 13 वीं शताब्दी) और माध्वाचार्य (14 वीं शताब्दी प्रभृति अनेक विद्वानों ने विविध प्रकार से भगवान् शंकराचार्य का गुणगान किया है। इधर बीसवीं सदी में वेदान्त के प्रसिद्ध विद्वान् एवं वैदिक गणित के अध्येता पुरी के पूर्व शंकराचार्य स्वामी भारती-कृष्णतीर्थ ने शंकराचार्य को ''गूढत्रतत्त्वोपदेष्टा'' कहकर महती प्रशंसा की हैं

भारतीय दर्शन के क्षेत्र में भारतीय और पश्चिमी विद्वानों द्वारा की गयी शंकराचार्य की गीत-स्तुति एवं महत्व प्रदर्शन का कारण भगवान् शंकराचार्य की विलक्षण प्रतिभा और उनके दर्शन का अद्वितीय रूप है। दर्शन के क्षेत्र में शंकराचार्य जैसा उदीयमान प्रतिभा एवं उदात्त व्यक्तित्व वाला अन्य आचार्य अथवा विद्वान् दृष्टिगोचर नहीं होता। बाल्यावस्था में ही जो कार्य आचार्य शंकर ने कर दिखाया वह किसी अन्य भारतीय दार्शनिक ने नहीं।[2]

भगवान् शंकराचार्य का आर्विभावकाल- भगवान् शंकराचार्य का अविर्भाव और तिरोभाव कब हुआ था, इस विषय में अनेक मतमतान्तर हैं; किन्तु ईसा से पूर्व षष्ठ शताब्दी से लेकर ईसा के बाद शताब्दी तक किसी समय में इनका आविर्भाव हुआ था यह सब लोग मानते हैं।

पहला मत यह है कि शंकराचार्य ने ई० पू० 508 वर्ष में जन्म ग्रहण किया तथा ई० पू० 676 वर्ष (2625 कलिवर्ष) में 32 वर्ष की अवस्था में देह त्याग दिया था।

कांचीमठ तथा द्वारिकामठ में जो गुरु परम्परा काल प्रसिद्ध है उसके अनुसार शंकर ई०पू०

---

1. Shankar's system is unmatched for its metaphysical depth and logical power. (Indian phillosophy; Dr. Radha krishnan; vol. 2 page 657.
2. स्वयं प्रकाश मुनि ने एक श्लोकी व्याख्यान में शंकर के जीवन का कथन किया है-
   'अष्टवर्षे चतुर्वेदी द्वादशे सर्वशास्त्रवि।
   षोडशे कृतवान् भाष्यं द्वात्रिंशे मुनिरभ्यगात्।।

पंचम शताब्दी में विद्यमान थे, ऐसा प्रतीत होता है। परन्तु एक मतानुसार शंकर का जन्मकाल 476 ई०पू० और दूसरे मतानुसार उनका निर्वाणकाल 475 ई०पू० है। इतना ही कांची और द्वारिका के मत में भेद है।

किसी किसी के मत से ई०पू० 44 में शंकर का अविर्भाव काल माना जाता है। केरलोत्पत्ति के मतानुसार शंकर का आविर्भाव काल ई०पू० चतुर्थ शतक है। इस मत में शंकर का जीवन काल 32 वर्ष के स्थान पर 38 वर्ष माना जाता है। एक अन्य मतानुसार शंकराचार्य का आर्विभाव षष्ठ शताब्दी का अन्त माना जाता है। Lewis Rice ने श्रृंगेरी मठ के गुरु परम्पराकाल को एक एक करके जोड़कर अनुमान किया था कि शंकराचार्य 740 से 767 के बीच में जीवित थे। एक मत यह भी है कि शंकराचार्य 788 खी. में आविर्भूत होकर 32 वर्ष की अवस्था में अर्थात् 820 खीष्टाब्द में तिरोहित हुए थे। आजकल प्रायः सभी विद्वान् इसे ही मानते हैं। नीलकण्ठ भदृकृत शंकर मन्दार सौरभ में भी यही मत गृहीत हुआ है। अध्यापक टीले ने अपने Outline of the history of Ancient relegious नामक ग्रन्थ के पृष्ठ 141 में इसी मत को ग्रहण किया गया है। डा० के.बी. पाठक को बेलगाँव में तीन पत्रों की एक पुस्तक मिली थी उसके अन्त में ऐसा लिखा था-

"दुष्टाचार विनाशाय प्रादुर्भूतो महीतले।

स एव शंकराचार्यः साक्षात् कैवल्य नायकः।।[1]

निधि नागेभवहृदयब्दे (3889 कल्यब्द =शकाब्द 710 =खीष्टाब्द 788) विभवे शंकरोदयः।

अष्टवर्षे चतुर्वेदान् द्वादशे सर्वशास्त्रकृत्।

षोडशे कृतवान् भाष्यं द्वात्रिंशे मुनिरभ्यगात्।।

कल्यब्दे चन्द्रनेत्राङ०कवहृब्दे गुहाप्रवेशः।

वैशाखे पूर्णिमायान्तु शंकरः शितामियात्।।

ब्रह्मानन्द कृत शंकर विजय में भी शंकर का जन्मकाल इस प्रकार दिया गया है-

"निधि नागेभव हृयब्दे विभवे शंकरोदयः।

कलौ तु शालिवाहस्य सखेन्दु शत सप्त के।।

कल्यब्दे भूहिगड०काग्नि सम्मिते शांकरो गुरुः।

शालिवाहशके त्वक्षि सिन्धु सप्तमितेऽभ्यगात्।।"

वस्तुतः भगवान् शंकराचार्य किस समय प्रादुर्भूत हुए कब तक जीवित रहे, उनके द्वारा प्रणीत कौन कौन से ग्रन्थ हैं, यथार्थतः इस का निश्चयन अत्यन्त कठिन है।

---

1. भारतीय संस्कृति और साधना; महामहोपाध्याय डा० गोपीनाथ कविराज पृष्ठ 94।।

शंकराचार्य का जन्म स्थान - भगवान् शंकराचार्य के विषय में जो कुछ साक्ष्य उपलब्ध है उसके अनुसार उनका जन्म केरल प्रदेश के पूर्णानदी के तटवर्ती कलादी नामक गाँव में वैशाख शुक्लपंचमी को हुआ था । उनके पिता का नाम शिवगरु तथा माता का नाम सुभद्रा था। उनकी माता के कई नाम प्रचलित हैं। इनमें सुभद्रा, सती, विशिष्टा, ओर आर्याम्बा प्रसिद्ध हैं। भगवान् शंकर की आराधना के द्वारा ही शंकराचार्य का अवतार हुआ था। इनके पिता शिवगुरु और माता सुभद्रा ने सन्तान न होने पर आशुतोष भगवान् शंकर की आराधना की थी। आराधना से प्रसन्न होकर एक दिन भगवान् शंकर ने ब्राह्मण के वेश में शिवगुरु को दर्शन दिया और पुत्र का वरदान दिया। शिव के वरदान स्वरूप प्राप्त होने के कारण ही इनका नाम शंकर पड़ा।

बालक शंकर के रूप में कोई महान विभूति अवतरित हुई है इसका प्रमाण बचपन से ही मिलने लगा था। एक वर्ष की अवस्था में ही बालक शंकर अपनी मातृभाषा में अपने भाव प्रकट करने लगे थे, दो वर्ष की अवस्था इन्हें पुराणादि की कथाएँ कण्ठस्थ हो गयी थीं। शंकर के तीसरे वर्ष में रहने पर ही इनके पिता शिवगुरु का स्वर्गवास हो गया। पाँच वर्ष की अवस्था में ही उपनयन संस्कार के बाद बालक शंकर को विद्या अध्ययन हेतु गुरु गृह भेज दिया गया। दो वर्ष में ही इन्होंने सम्पूर्ण वेद,वेदान्त और वेदांगों का अध्ययन पूर्ण कर लिया इसके उपरान्त शंकर घर चले आए।

शंकर की माता ने इनका विवाह कर देने का निश्चय किया, किन्तु शंकर ने सन्यास लेने की इच्छा व्यक्त की। एक दिन माँ के साथ नदी में स्नानार्थ गए हुए थे, जहाँ एक मगर ने उनका पैर पकड़ लिया। शंकर ने माँ से कहा कि ''यदि तुम मुझे सन्यास की आज्ञा दे दो तो मगर पैर छोड़ देगा।'' इस पर माँ ने हामी भर दी। इस प्रकार आठ वर्ष की वय में ही शंकर ने सन्यास ग्रहण कर लिया किन्तु माँ ने इनसे एक वचन ले लिया कि मेरी अन्त्येष्टि तुम्हारे द्वारा ही होनी चाहिए जिसकी स्वीकृति भी शंकर ने माँ को दी। कहते हैं गृह त्याग के अवसर पर शंकर से उनके कुल देवता भगवान् श्री कृष्ण ने स्वप्न में कहा कि तुम्हारे यहाँ से चले जाने के बाद यह मन्दिर नदी द्वारा गिरा दिया जाएगा। इसलिए मूर्ति को कहीं अन्यत्र प्रतिष्ठापित कर दो। इस पर शंकर ने उस मूर्त्ति को एक ऊँचे टीले पर प्रतिष्ठापित कर दिया। बाद को नदी की तेज कटान के कारण वह मन्दिर सचमुच ही धराशायी हो गया।

गुरु गोविन्द भगवत्पाद से शंकर की भेंट

सन्यास गुरु की खोज में शंकर नर्मदा तट पर पहुँचे। वहाँ पर्वत की गुफामें महात्मा गोविन्दाचार्य तप में निमग्न थे। शंकर ने गुहा के एक छिद्र से उनका दर्शन किया। कहते हैं कि उस समय नर्मदा का जल बहुत बढ़ रहा था जो गुफा में प्रवेश करने वाला था शंकर ने अपना कमण्डल गुफा के बाहर रख दिया और नर्मदा के बाढ़ का जल कमण्डल में समाहित हो गया। यह कौतुक देख गोविन्दाचार्य बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने अपना पैर गुफा के बाहर निकाल दिया। शंकराचार्य ने चरणपूजा कर उनकी स्तुति की तथा चातुर्मास्य पर्यन्त भूमि सुर ग्राम में रहाकर गुरुगोविन्द की

प्रतीक्षा की। चातुर्मास्य की समाप्ति पर गुरु गोविन्द भगवत्पाद से शंकर ने दीक्षा ली। दीक्षोपरान्त गुरु ने उनका नाम 'भगवतपूज्यपादाचार्य' रखा । उन्होंने गुरूपदिष्ट मार्ग से साधना शुरू कर दी और अल्पकाल में ही बहुत बड़े योग सिद्ध महात्मा हो गए। उनकी सिद्धि से प्रसन्न होकर गुरु ने उन्हें काशी जाकर समस्त अवैदिक मतों का खण्डन करके वेद वेदान्त सम्मत अद्वैत मत का प्रतिपादन करने ओर वेदान्त सूत्र पर भाष्य लिखने को कहा। गुरु की आज्ञा शिरोधार्य कर काशी चले आए।

काशी में शंकराचार्य- काशी में शंकराचार्य ने वैदिक धर्म का प्रचार प्रसार आरम्भ कर दिया, इससे उनकी ख्याति बढ़ने लगी और कई लोग उनकी वाग्मिता एवं विद्वत्ता से प्रभावित होकर उनके शिष्य भी बने। उनके सर्व प्रथम शिष्य सनन्दन हुए जो बाद में पद्मपादाचार्य के नाम से प्रसिद्ध हुए। काशी में शिष्यों को अध्यापन के साथ वे ग्रन्थों का प्रणयन भी करते जाते थे। एक बार प्रातः काल जब आचार्य गंगा स्नान कर लौट रहे थे तो मार्ग में उन्हें एक चाण्डाल मिला जो चार श्वान लेकर मार्ग में चला जा रहा था। शंकराचार्य उस चाण्डाल को समीप देखकर उससे घृणा प्रकट करने लगे, तथा दूर हटो ऐसा कहा। इस पर उस चाण्डाल ने कहा कि किससे दूर हटूँ आप तो ब्रह्म सत्य और जगत् को मिथ्या मानते हैं। तो शरीर तो मिथ्या है, इससे घृणा कैसी क्योंकि सबमें तो वही आत्मा विराज रही है। और आत्मा चिद्रूप असंग, सद्रूप, आनन्दरूप, पवित्र एवं भेद रहित और सर्वव्यापक है। अतः आत्मा में भेद की कल्पना करने वाला व्यक्ति कदापि वैदिक मत की रक्षा एवं अद्वैत मत का प्रतिपादन नहीं कर सकता है। उसने शंकर से कहा कि तुम्हारा सन्यास एवं ज्ञान पूर्ण रूपेण निष्फल है। शंकराचार्य चाण्डाल की बात सुनकर अचम्भित रह गए उन्होंने कहा कि यदि आप भगवान् विश्वनाथ जी हैं तो दर्शन दें, इसके पश्चात् चाण्डाल ने भूतभावन, आशुतोष भगवान् विश्वनाथ जी के रूप में उन्हे दिया तथा उन्हें ब्रह्मसूत्र पर भाष्य लिखने और धर्म का प्रचार करने का आदेश दिया। वेदान्त सूत्र पर जब वे भाष्य लिख चुके तो एक दिन एक ब्राह्मण ने गंगातट पर उनसे एक सूत्र का अर्थ पूछा। उस सूत्रपर उस ब्राह्मण के साथ उनका आठ दिन तक शास्त्रार्थ हुआ। बाद को उनके एक शिष्य ने ध्यानस्थ हो जब देखा कि वह ब्राह्मण कोई और नहीं स्वयं वेदव्यास जी हैं तो शिष्य ने निम्न श्लोक पढ़ा-

व्यासो नारायणः साक्षात् शंकरः शंकरः स्वयम्।
तयोर्विवादे सम्प्राप्ते न जाने किं करोम्यहम्।।

इस पर शंकराचार्य ने भक्तिपूर्वक भगवान् वेद व्यास को प्रणाम किया ओर क्षमायाचना की। तत्पश्चात् भगवन् वेदव्यास ने उन्हें अद्वैतवाद का प्रचार करने की आज्ञा दी और उनकी सोलह वर्ष की अल्पायु को 32 बत्तीस वर्ष तक बढ़ा दिया। इसके बाद भगवान् शंकराचार्य दिग्विजय के लिए निकल पड़े।

प्रयाग में शंकराचार्य- काशी में रहते हुए शंकराचार्य ने प्रायः सभी विरुद्ध मत वालों को परास्त कर दिया था। वहाँ से वे कुरुक्षेत्र होते हुए बदरिकाश्रम गए। वहाँ कुछ दिन रहकर उन्होंने कुछ

और ग्रन्थ लिखे। जो ग्रन्थ उनके मिलते हैं प्रायः सबको उन्होंने काशी अथवा बदरिकाश्रम में ही लिखा था। 12 वर्ष से 16 वर्ष की अवस्था में ही उन्होंने सारे ग्रन्थ लिखे थे। बदरिकाश्रम से चलकर भगवान् शंकराचार्य प्रयाग आए।

कुमारिल भट्ट और शंकराचार्य- प्रयाग में शंकराचार्य की मुलाकात कुमारिल भट्ट से हुई दक्षिण भारत में कुमारिल भट्ट को काफी प्रसिद्धि प्राप्त थी। ये मीमांसक थे एवं जैमिनि मतावलम्बी थे। बौद्ध एवं जैन मतावलम्बियों को परास्त कर आचार्य शंकर ने अपने मत का प्रतिपादन किया था। आचार्य कुमारिल शांकर भाष्य को देखकर बड़े प्रसन्न हुए। प्रयाग में आचार्य शंकर एवं आचार्य कुमारिल का साक्षात्कार बड़े दारुण समय में हुआ था। आचार्य कुमारिल उस समय अपनी निरीश्वरवादिता पर पश्चात्ताप करके अपने शरीर को तुषाग्नि में भस्म करने के लिए चिता मे प्रविष्ट हुए थे, तथा अर्द्धदग्ध भी हो गए थे। कहते हैं कि आचार्य शंकर ने उस समय उनसे शास्त्रार्थ की इच्छा व्यक्त की,किन्तु अर्द्धदग्ध कुमारिल उस समय विवश थे। इसलिए आचार्य कुमारिल ने माहिष्मतीपुरी निवासी उद्भट विद्वान मण्डन मिश्र से शास्त्रार्थ करने को कहा। मण्डनमिश्र कुमारिल के बहनोई थे। कुमारिल के कहने पर आचार्य शंकर माहिष्मती गए।

शंकराचार्य और मण्डन मिश्र- मण्डन मिश्र अपने समय के उद्भट विद्वान् और कर्मवाद के समर्थक थे। उनकी विद्वता का परिचय इसी से चलता है कि जब भगवान् शंकराचार्य ने माहिष्मतीपुरी पहुँचकर एक स्त्री से मण्डन मिश्र का घर पूछा तो उसने कहा-'वेदस्वतः प्रमाण, इस विषय की चर्चा नीड़स्थ शुकांगनाएँ जहाँ कर रही हों वही मण्डन मिश्र का घर है।[1] साथ ही कर्म स्वतः फल देता है अथवा ईश्वर कर्म का फल देता है यह चर्चा जहाँ नीड़स्थ शुकांगनाएँ कर रही हों, वही मण्डन मिश्र का घर है। स्त्री के इन वाक्यों को सुनकर आचार्य शंकर चकित हो गए। जब आचार्य शंकर मण्डन मिश्र के घर पहुँचे तो मण्डन मिश्र घर का द्वार बन्द करके श्राद्ध कर्म में व्यस्त थे। भगवान् शंकराचार्य अपने योगबल से मण्डन मिश्र के समीप जाकर बैठ गए। मण्डन मिश्र अत्यन्त क्रोधित हुए, और दोनों विद्वानों का शास्त्रार्थ निश्चित हुआ, तथा शास्त्रार्थ में यह शर्त रखी गयी कि जो पराजित होगा वह दूसरे का शिष्य हो जाएगा।

स्वतः प्रमाणं परतः प्रमाणं
कीरांगना यत्र गिरो गिरन्ति।
द्वारस्थ-नीडान्तर-सन्निरूद्धा
जानीहि तन्मण्डनामिश्रधाम।।
फलप्रदं कर्म फलप्रदोऽजः
कीरांगना यत्र गिरो गिरन्ति।

1. स्वतः प्रमाणं परतः प्रमाणं कीरांगनो यत्र गिरा बदन्ति तं जानीह मण्डन मिश्र धाम।।

द्वारस्थ नीडान्तर सन्निरूद्ध,
जानीहि तन्मण्डन मिश्रधाम।
जगद् ध्रुवं स्याज्जगदध्रुवं स्यात्
कीरांगना यत्र गिरो गिरन्ति।
द्वारस्थनीडान्तर सन्निरूद्धा
जानीहि तन्मण्डन मिश्र धाम।।

और शास्त्रार्थ में मध्यस्थ बनायीं गयीं मण्डन मिश्र की पत्नी परम विदुषी भारती। भारती अपने गृहस्थ कार्यो में तल्लीन थी, अतएव उन्होंने एक ताजा फूलों की एक-एक माला दोनों विद्वानों के गले में डाल दी और कहा कि जिसके गले की माला कुम्हला जाएगी उसकी पराजय मानी जाएगी। शंकराचार्य अद्वैत मत का खण्डन कर रहे थे और मण्डन मिश्र कर्म वाद का। शास्त्रार्थ होते होते कई दिन बीत गए। फलतः मण्डन मिश्र के गले की माला कुम्हिला गयी। पराजित होकर मण्डन मिश्र शंकराचार्य को अपना गुरु बनाने के लिए और सन्यास ग्रहण करने की प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए, शंकराचार्य जी से प्रार्थना करने लगे। मण्डन मिश्र की पत्नी परम विदुषी भारती ने आचार्य शंकर से कहा कि 'मण्डन मिश्र की यह अर्द्ध पराजय मात्र है, आपको मुझसे भी शास्त्रार्थ करना पड़ेगा। इसके बाद भारती ने शंकराचार्य से कामशास्त्र के प्रश्न प्रस्तुत किए तो बाल ब्रम्हचारी शंकर निरुत्तर हो गए ओर भारती से एक माह का समय माँगा। कहा जाता है कि आमरूक के राजा का उसी समय निधन हुआ था और आचार्य शंकर योगबल से उसी शरीर में प्रविष्ट हो गए और एक माह तक कामशास्त्र सम्बन्धी सभी बातों की जानकारी करते रहे। तत्पश्चात् योगबल से उस शरीर को छोड़कर पुनः अपने पूर्व शरीर में आ गए और भारती के प्रश्नों का सम्यक् प्रकारेण उत्तर दिया। तदुपरान्त मण्डन मिश्र ने शंकराचार्य से विधिवत् सन्यास की दीक्षा ली ओर "सुरेश्वराचार्य" नाम से विश्वविख्यात हुए।[1] पति के सन्यासी हो जाने पर भारती ब्रह्म लोक जाने को उद्यत हुई, किन्तु भगवान् शंकराचार्य ने समझा-बुझाकर उन्हें श्रृंगगिरि ले गए, और वहाँ रहकर अध्यापन कार्य की उनसे प्रार्थना की। कहा जाता है कि भारती द्वारा शिक्षार्जन के कारण ही श्रृंगेरी और द्वारका के मठों का शिष्य सम्प्रदाय भारती नाम से प्रसिद्ध हुआ।

मगध विजयोपरानत शंकराचार्य दक्षिण की ओर चले तथा महाराष्ट्र में शैव और कापालिकों को पराजित किया। एक बार एक कापालिक ने तो उनसे ही कह दिया कि आप जैसे व्यक्ति की बलि देने से मेरी सिद्धि हो जाएगी। वह बलि देने के उद्देश्य से ही उनका शिष्य बन गया था। भगवान् शंकराचार्य ने कहा कि जब मैं ध्यानस्थ हो जाऊँ तब तुम चाहो तों मेरी बलि चढ़ा सकते हो ओर

1. प्रो० हिरियाना के मतानुसार सुरेश्वराचार्य ओर मण्डन मिश्र दानो भिन्न भिन्न थे। J.R.A.S . April 1923 and January 1924.

वे तलवार की धार के नीचे भी निर्विकार, निर्भय ध्यानस्थ बैठे रहे। पद्मपादाचार्य ने योगबल से ध्यानस्थ हो सारा रहस्य जान लिया और उस कापालिक को ही मार डाला। उस समय भी शंकराचार्य की साधना का अपूर्व प्रभाव देखा गया। कापालिक की तलवार की धार के नीचे भी वे समाधिस्थ और शान्त बैठे रहे। वहाँ से चलकर आचार्य शंकर दक्षिण में तुंगभद्रा के तटपर एक मन्दिर निर्मित कराकर उसमें शारदा देवी की स्थापना की।.इस मन्दिर के साथ जिस मठ की स्थापना हुई उसे श्रृंगेरी मठ कहते हैं। सुरेश्वराचार्य इसी मठ पर आचार्य पद पर प्रतिष्ठापित हुए थे। इसी समय शंकराचार्य को अपनी वृद्धा माता के अन्त समय का भान (बोध) हुआ और वे घर वापस आए और माता की अन्त्येष्टि की। कहा जाता है कि माता की इच्छा के अनुसार इन्होंने प्रार्थना करके उन्हें विष्णुलोक में भेजवाया था। इसके पश्चात् वे पुनः श्रृंगेरी मठ में आए और वहाँ से वे पुरी आकर गोवर्धन मठ की स्थापना की और वहाँ पद्मपादाचार्य को आचार्य पद पर प्रतिष्ठापित किया। आचार्य शंकर ने चोल और पाण्ड्य देश के राजाओं की सहायता से दक्षिण के शाक्त, गाणपत्य और कापालिक सम्प्रदाय के अनाचार को दूरकर सनातन धर्म की विजय पताका फहरायी। इस प्रकार दक्षिण में सर्वत्र सत्य सनातन धर्म की अमर पताका फहराकर वे पुनः उत्तर भारत की ओर उन्मुख हुए। रास्तें में पहले आचार्य शंकर कुछ दिन बरार में रुके इसके बाद उज्जैन पहुँचे। उज्जैन में उन्होंने भैरवों की भीषण साधना को बन्द कराया। वहाँ से ये गुजरात आए और वहाँ द्वारका में एक पीठ की स्थापना की तथा इस द्वारिका पीठ पर अपने शिष्य हस्वमलकाचार्य को आचार्य पद पर अभिषिक्त किया। फिर गांगेय प्रदेश के विद्वानों पण्डितों पर विजय श्री प्राप्त करते हुए आचार्य शंकर कश्मीर में पहुँचे जहाँ उनका वहाँ के विद्वानों से शास्त्रार्थ हुआ और उन्होंने उनको पराजित कर अपने मत का मण्डन किया। कहा जाता है कि कश्मीर में आचार्य शंकर को माँ देवी का साक्षात् दर्शन हुआ था। कश्मीर के बाद आचार्य शंकर आसाम स्थित कामरूप (कामाख्या) धाम में पधारे जहाँ उनका शैवों से शास्त्रार्थ हुआ। कामरूप से वे हिमालय के बदरिकाश्रम में आए और वहाँ ज्योतिर्मठ (ज्योतिष्पीठ) की स्थापना की तथा तोटकाचार्य जी को वहाँ आचार्य पद पर प्रतिष्ठापित किए। वहाँ से आचार्य शंकर केदारक्षेत्र में आए और यहीं पर कुछ दिनों बाद वे शिवसायुज्य को प्राप्त हो गए। भगवान् केदारनाथ की ज्योति में समाहित हो गए। आज भी केदारनाथ में मन्दिर के पीछे उनकी समाधि स्थित है। बदरिकाश्रम में तो आचार्य शंकर ने भगवान् की मूर्ति कुण्ड से निकालकर स्थापित की थी। और वहाँ की पूजा अर्चना के लिए केरल के नम्बूदरीपाद ब्राह्मणों को रखा था और वहाँ पर यह परम्परा आज भी बरकरार है। रावल ही वहाँ के प्रधान पुजारी होते हैं। इस प्रकार आचार्य शंकर ने भारत की सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय एकता को बनाए रखने में महत्वपूर्ण कार्य किया। उन्होंने सम्पूर्ण भारत के विभिन्न अंचलों का परिभ्रमण किया उस युग के प्रख्यात विद्वानों के पास जाकर उन्होंने उनके विचारों को जाना व सुना और अपने विचारों से उन्हें अवगत कराया। यह विचार विनिमय मात्र तत्व निर्णय के लिए ही वे करते थे। उन्होंने भारत के सभी तीर्थ स्थानों का अवगाहन किया।

प्रसिद्धि है कि शंकराचार्य कैलास से पाँच स्फटिक लिंग लाए थे। उनमें से चार लिंगों की

स्थापना उन्होंने क्रमशः बदरीनारायण, नीलकण्ठ क्षेत्र (नेपाल) श्रृंगेरी ओर चिदम्बरम् में की थी। सर्वश्रेप्ठ पंचम लिंग अपने पास रख छोड़ा था। वह योगलिंग नाम से प्रसिद्ध था। कांची में शंकर हमेशा उसी की पूजा किया करते थे। देह त्याग के समय शंकर ने उस लिंग को सुरेश्वर के हाथ में समर्पित कर कांची पीठ और वहाँ के शारदामठ का भार भी उन्हीं को दे दिया था (यह शारदामठ श्रृंगेरी के शारदा पीठ से भिन्न है) शिवरहस्य (9/16) में भी लिखा है कि योग लिंग की स्थापना कांची में ही हुई थी। मार्कण्डेय संहिता (काण्ड 72 परिस्पन्दन) में लिखा है कि शंकर ने कामकोटिपीठ में योगलिंग की प्रतिष्ठा की थी ओर उसके अर्चन के लिए सुरेश्वराचार्य की नियुक्ति की थी। वेंकटेशन के मत से नैषधचरित के 12 वें सर्ग में जिस कांचीस्थ स्फटिक लिंग का वर्णन है, वह शंकर स्थापित योगेश्वर लिंग ही है। इस लिंग के नाम के विषय में कहीं योगश्वर और कहीं योगेश्वर इस प्रकार पाठभेद मिलता है। किन्तु योगेश्वर पाठ ही ठीक प्रतीत होता है।

ग्रन्थ रचना- आचार्य शंकर ने वस्तुतः कितने ग्रन्थ लिखे हैं यह आज भी विवाद का विषय है, किन्तु प्रायः दो सौ ग्रन्थों की रचना को आद्य शंकराचार्य की कृति माना जाता है। इनमें प्रकरण ग्रन्थ,भाष्य, स्तोत्र प्रभृति नाना प्रकार के लेख और रचना गणनीय हैं। उन्होंने प्रमुख उपनिषदों, ब्रह्मसूत्र और गीता पर भाष्य लिखे। 'उपदेशसाहस्री' और'शतश्लोकी' आदि उनकी दार्शनिक प्रतिभा के ज्वलन्त प्रमाण हैं। वे उच्चकोटि के कवि भी थे। आनन्द लहरी, सौन्दर्य लहरी 'हरिमीड़े स्तोत्र' 'दक्षिणामूर्तिस्तोत्र' **प्रभृति ग्रन्थें** में उनके कवि हृदय एवं भक्त हृदय का अद्‌भुत सामंजस्य दिखायी देता है।

शंकराचार्य द्वारा लिखित ग्रन्थों का निर्णय करते समय जो सबसे विषम परिस्थिति का सामना करना पड़ता है वह है शंकराचार्य के ब्रह्मीभूत होने के उपरान्त भी शंकराचार्य पद पर प्रतिष्ठापित आचार्यो ने इसी नाम से ग्रन्थों का प्रणयन किया है। जिससे यह निर्णय करना कठिन हो जाता है कि कौन से ग्रन्थ आद्य शंकराचार्य के है। ओर कौन से पश्चाद्वर्ती शंकराचार्यो के फिर भी शैली एवं अन्य साक्ष्यों के आधार पर शंकराचार्य लिखित ग्रन्थों को चार कोटियों मं विभक्त किया जा सकता है।

1. भाष्य ग्रन्थ 2. स्तोत्र ग्रन्थ 3. प्रकरण ग्रन्थ 4. तन्त्र ग्रन्थ।

1. भाष्य ग्रन्थ- भाष्य ग्रन्थ दो प्रकार के हैं। अ- प्रस्थानत्रयी- ब्रहमसूत्र गीता उपनिषदों के भाष्य ग्रन्थ और ब- सहस्रनाम ग्रन्थों पर भाष्य यथा विष्णुसहस्त्रनाम भाष्य आदि।

अ- प्रस्थानत्रयी के भाष्य ग्रन्थ-

ब्रह्मसूत्र भाष्य- ब्रह्मसूत्र पर भाष्य शंकराचार्य की महत्त्वपूर्ण रचना है। शंकराचार्य ने ब्रह्मसूत्र पर भाष्य लिखकर एक स्पष्ट,एवं सरल शैलीयुक्त भाष्य की आवश्यकता की पूर्ति की है। वाचस्पति मिश्र जैसे प्रौढ़ दार्शनिक ने तों शंकर भाष्य के सम्बन्ध में लिखा है कि यह केवल प्रसन्न

गम्भीर ही नहीं अपितु गंगाजल के समान पवित्र है। उन्होंने आगे कहा है कि जिस प्रकार गलियों का जल गंगा जल में मिलकर पवित्र हो जाता है उसी प्रकार हमारी व्याख्या (भामती) भी इस भाष्य के संसर्ग से पवित्र हो जाएगी।[1]

२. गीता भाष्य- शंकराचार्य ने गीता पर भाष्य, दूसरे अध्याय के गयारहवें श्लोक से आरम्भ किया है। इस भाष्य में शंकराचार्य ने गीता की ज्ञानपरक व्याख्या की है। आचार्य ने गीता के अनुसार केवल तत्वज्ञान से ही मोक्ष प्राप्त सिद्ध की है। यहाँ ज्ञान और कर्म समुच्चय से मोक्ष प्राप्ति का शंकराचार्य ने निषेध किया है।[2]

३. उपनिषद् भाष्य- शंकराचार्य ने बारह उपनिषदों पर अपना भाष्य लिखा है। ये उपनिषद् है- ईश, केन, कठ, प्रश्न मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, एतरेय, छान्दोग्य, वृहदारण्यक, श्वेताश्वतर, और नृसिंहतापिनी। इनमें से कई उपनिषद् भाष्यों के सम्बन्ध में आज तक सन्देह बना हुआ है। प्रस्थनत्रयी के भाष्य साहित्यिक दृष्टि से उत्कृष्ट गद्य के आदर्श हैं।

(ब) उत्तर ग्रन्थों पर भाष्य ग्रन्थ- प्रस्थानत्रयी के अतिरिक्त अन्य ग्रन्थों पर भी शंकराचार्य द्वारा विरचित भाष्य उपलब्ध हैं। परन्तु इनमें से कुछ को ही प्रमाणिक कहा जा सकता है। निम्नलिखित भाष्य निश्चय ही शंकराचार्य द्वारा प्रणीत हैं-

विष्णुसहस्त्रनाम भाष्य- इसमें आचार्य ने प्रत्येक नाम की युक्तियुक्त व्याख्या की है।

सनत्सुजातीय भाष्य- धृतराष्ट्र के मोह को दूर करने के लिए सनत्सुजाती ऋषि ने जो उपदेश दिया था उसका वर्णन महाभारत[3] में उपलब्ध होता है। इस पर्व को सनत्सुजातीय पर्व कहते हैं।इसलिए ही इस भाष्य को सनत्सुजातीय भाष्य कहते हैं।

ललिता त्रिशती भाष्य - ललिता त्रिशती में ललिता माता के तीन सौ नामों का उल्लेख है। ललितोपासक आचार्य शंकर ने इस भाष्य में इन नामों की व्याख्या उपनिषद् तथा तन्त्रों के प्रमाण के आधार पर की है।

माण्डूक्य कारिका भाष्य- आचार्य शंकर के परम्गुरु गौड़पादाचार्य ने माण्डूक्योपनिषद् पर कारिकाएँ लिखी हैं। इन्ही कारिकाओं के ऊपर शंकराचार्य ने भाष्य रचना की है।[4]

---

1. नत्वा विशुद्ध विज्ञानं,शंकरं करुणाकरम्।
   भाष्यं प्रसन्न गम्भीरं, तत्प्रणीतं विभज्यते।।
   आचार्यकृति निवेशनमप्यवधूतं क्वोऽस्मदादीनाम्।
   रथ्योदकमिव गंगा प्रवाहपातः पवित्रयति।। भामती मंगलश्लोक 6/7।।
2. मीतासु केवलादेव तत्वज्ञानात् मोक्ष प्राप्तिः न कर्म समुच्चितात् इति निश्चितोऽर्थः।
3. महाभारत 42-46 उद्योग पर्व। उपोद्घात-गीताभाष्य ।।
4. शंकराचार्य उनके मायावाद तथा अन्य सिद्धान्तों का आलोचनात्मक अध्ययन डा० राममूर्ति शर्मा- पृष्ठ 21 से साभार।

2. स्तोत्र गन्थ- आचार्य शंकर परमार्थतः अद्वैत सिद्धान्त के समर्थक होते हुए भी व्यवहार में सगुण ब्रह्म के उपासक थे। इसीलिए उनके हृदय में देवी देवताओं का भी उच्च स्थान था। और इसी कारण उन्होंने शिव, विष्णु, गणेश, शक्ति आदि देवताओं के सम्बन्ध में स्तोत्र और स्तुतियाँ लिखी हैं। आचार्य शंकर के इन स्तोत्रों में साहित्यिक और दार्शनिक दानो विशिष्टताएँ प्राप्त होती हैं। यहाँ हम शंकर के नाम से प्रसिद्ध स्तोत्रों की नामावलि दे रहे हैं।

गणेश स्तोत्र- गणेश पंचरत्न, गणेश भुजंग प्रयात, गणेशाष्टक, वरद् गणेश स्तोत्र।

शिवस्तोत्र- शिव भुजंग, शिवानन्द लहरी, शिवपदादिक- शान्त स्तोत्र, शिवकेशादि पादान्त स्तोत्र,वेदसार शिवस्तोत्रशिवापराध क्षमापन स्तोत्र,सुवर्णमाला स्तुति, दक्षिणामूर्ति वर्णमाला, दक्षिणामूर्ति अष्टक, मृत्युंजयमानसिक पूजा, शिवनामावल्यष्टक उमामहेश्वर, दक्षिणामूर्ति स्तोत्र कालभैरवाष्टक, शिवपंचाक्षर, नक्षत्रमाला, द्वादश लिंग स्तोत्र, दशश्लोकी स्तुति।

देवी स्तोत्र- सौन्दर्य लहरी, देवी भुजंग स्तोत्र, आनन्द लहरी, त्रिपुर सुन्दरी वैदपाद, त्रिपुरसुन्दरी मानस पूजा, देवी चतुः षष्ठ्युपचार पूजा, त्रिपुरसुन्दर्यष्टक, ललितपंचरत्न, कल्याण वृष्टिसत्व, नवरत्नमालिका, मंत्रमात्रिका पुष्पमाला, गौरीदशक, भवानी भुजंग, कनकधारा, अन्नपूर्णाष्टक, मीनाक्षी पंचरत्न, मीनाक्षी स्तोत्र, गोविन्दाष्टक, भगवान्मानस पूजा, जगन्नाथाष्टक।

युगल देवता स्तोत्र- अर्द्ध नारीश्वर स्तोत्र, उमामहेश्वर स्तोत्र, लक्ष्मीनृसिंह पंचरत्न, लक्ष्मीनृसिंह करुणारस स्तोत्र। .

नदीतीर्थ सम्बन्धी स्तोत्र- नर्मदाष्टक, गंगाष्टक, यमुनाष्टक मणिकर्णिकाष्टक, काशी पंचक।

साधारण स्तोत्र- हनुमत पंचरत्न, सुब्रहण्य भुजंग, प्रातः स्मरण स्तोत्र,गुर्वष्टक।

उक्त चौसठ स्तोत्र शंकराचार्य की प्रकाशित कृतियाँ हैं। इन स्तोत्रों के अतिरिक्त निम्नलिखित स्तोत्र भी आचार्य शंकर द्वारा विरचित माने जाते हैं-

चर्पटपंजरिका या मोह मुद्‌गर , द्वादश पंजरिका, षट्पदी इसका दूसरा नाम विष्णु षटपदी भी है। इसके ऊपर छः टीकाएँ भी मिलती हैं, जिनमें एक टीका स्वयं शंकराचार्य की है। मनीषा पंचक- इस स्तोत्र में अन्तिम पाँच पद्यों के अन्त में ' मनीषा' शब्द आता है। इसलिए इसे मनीषा पंचक कहते हैं। सोपान पंचक- इसका दूसरा नाम उपदेश पंचक भी है।[1] आनन्द लहरी- इस स्तोत्र की रचना शिखरिणी छन्द में की गई है। इसके ऊपर 30 टीकाएँ मिलती हैं। जिनमें एक टीका स्वयं शंकराचार्य की ही बतायी जाती है। गोविन्दाष्टक- इस स्तोत्र पर आनन्दतीर्थ की व्याख्या मिलती है।[2] दक्षिणामूर्ति स्तोत्र- दशार्दूलविक्रीडित पद्यों में यह स्तोत्र निबद्ध है। इसके ऊपर सुरेश्वराचार्य ने 'मानसोल्लास'

---

1. शंकर ग्रन्थावाली, वाणी विलास प्रेस भाग 16 पृष्ठ 127
2. शंकर ग्रन्थावली, वाणीविलास प्रेस भाग 18 पृष्ठ 56-58

नामक टीका लिखी है। दश श्लोकी इसी का दूसरा नाम चिदानन्द दश श्लोकी या चिदानन्द स्तवराज है। हरिमीडेस्तोत्र- इसके ऊपर विद्यारण्य, स्वयंप्रकाश, आनन्दगिरि, तथा शंकराचार्य के द्वारा लिखित टीकाएँ उपलब्ध हैं। शिवभुजंग प्रयात- माधवाचार्य का कथन है कि इन्हीं पद्यों के द्वारा शंकर की स्तुति की थी। सौन्दर्य लहरी- यह स्तोत्र ग्रन्थ तन्त्र का विशिष्ट ग्रन्थ है। श्री विद्या के उपासकों के लिए बड़ा उपयोगी है। इस पर लक्ष्मी धर की विद्वतापूर्ण टीका है।

प्रकरण ग्रन्थ- सर्वसाधारण को वेदान्त विषय से अवगत कराने के लिए शंकराचार्य ने प्रकरण ग्रन्थों का निर्माण गद्य में न करके श्लोकों में किया था। वेदान्त तत्व के प्रतिपादक होने से ही ये ग्रन्थ 'प्रकरण ग्रन्थ' कहलाते हैं। साहित्यिक संस्पर्श ने इन ग्रन्थों को ओर भी रुचिकर बना दिया है। शंकराचार्य द्वारा विरचित निम्नलिखित प्रख्यात प्रकरण ग्रन्थ उपलब्ध हैं-[1]

अद्वैत पंचरत्न- इसमें अद्वैत के प्रतिपादक पाँच श्लोक हैं। इसी का नाम आत्म पंचक भी है। कहीं कहीं इसमें छः श्लोक भी मिलते हैं। अद्वैतानुभूति- इसमें 84 अनुष्टुप छन्दों में अद्वैत तत्व का प्रतिपादन है। अनात्म श्री विगर्हण प्रकरण- इस ग्रन्थ में विषय-वासना में ही जीवन व्यतीत करने वाले पुरुषों की निन्दा की गई है। श्लोकों की संख्या 18 है।

अपरोक्षानुभूति- इस ग्रन्थ में अपरोक्ष अनुभव के साधन तथा स्वरूप का वर्णन है। श्लोकों की संख्या 144 है।

आत्मबोध- इस ग्रन्थ में 68 श्लोकों में आत्मा के स्वरूप का विस्तृत वर्णन किया गया है। बोधेन्द्र की इस ग्रन्थ पर 'भाव प्रकाशिका' टीका का भी उल्लेख मिलता है।

उपदेश पंचक- इस ग्रन्थ के अन्तर्गत पाँच पद्यों में वेदान्त के आचरण का उपदेश मिलता है।

उपदेश साहस्री- इस ग्रन्थ पूरा नाम ' सकल वेदोपनिषत्सारोपदेशसाहस्री' है। इस नाम की दो पुस्तकें मिलती है (1) गद्य प्रबन्ध (11)। पद्य प्रबन्ध में 19 प्रकरण हैं। यही शंकराचार्य की वास्तविक रचना है। रामतीर्थ ने गद्य पद्य दोनों प्रबन्धों पर अपनी सरल व्याख्या लिखी है। एकश्लोकी- एक श्लोक के ही अन्तर्गत इसमें परम ज्योति का वर्णन किया गया है।

कौपीन पंचक- इसके प्रत्येक श्लोक का अन्तिम चरण 'कौपीनवन्तः ' खलु भाग्यवन्तः' है।

जीवनमुक्तानन्द लहरी- इस ग्रन्थ में जीवनमुक्त पुरुष के आनन्द का ललित वर्णन है। इसके प्रत्येक पद्य के अन्तिम चरण 'मुनिर्निर्व्यामोहं भजति गुरु दीक्षाक्षततमः' है।

तत्वबोध- इसमें वेदान्त के तत्वों का प्रश्नोत्तर रूप से वर्णन मिलता हैं।

तत्वोपदेश- इसमें 87 अनुष्टुपों में 'तत्' तथा 'त्व' पदों के अर्थ का वर्णन किया गया है

1. शंकराचार्य उनके मायावाद तथा अन्य सिद्धान्तों का आलोचनात्मक अध्ययन-डा० राममूर्तिशर्मा, साहित्य भण्डार सुभाष बाजार मेरठ (प्रकाशक) से साभार।

और गुरूपदेश से आत्मतत्व की अनुभूति का वर्णन है।

धन्याष्टक- ब्रह्मज्ञान से जीवन को धन्य मानने वाले पुरुषों का सुन्दर वर्णन इस प्रकरण ग्रन्थ का विषय है।

निर्गुण मानस पूजा– इसमें निर्गुण तत्व की मानसिक पूजा का विवरण मिलता है।

निर्वाण मंजरी- इसमें 12 श्लोकों में शिवतत्व के स्वरूप का विवेचन है। इस ग्रन्थ में अद्वैत एवं शुद्ध आत्मा का सुन्दर वर्णन किया गया है।

निर्वाणषट्क- इसके अन्तर्गत छ : श्लोकों में आत्मस्वरूप का वर्णन है।

पंचीकरण प्रकरण- जैसा कि नाम से ही ज्ञात होता है इसमें पंचीकरण का गद्य में वर्णन किया गया है। सुरेश्वराचार्य ने इस के ऊपर वार्तिक लिखा है। जिस पर शिवरामतीर्थ का विवरण मिलता है। इस विवरण पर भी 'आभरण' नाम की एक टीका मिलती है।

परापूजा- इसमें परमतत्व की पूजा का वर्णन है।

प्रबोध सुधाकर- इसमें वेदान्त तत्व का अत्यन्त सुन्दर निरूपण किया गया है। इसमें 257 आर्याछन्द हैं। इसकी भाषा बड़ी सरल एवं प्रांजल है।

प्रश्नोत्तर रत्नमालिका- इसके अन्तर्गत प्रश्न और उत्तर के रूप में वेदान्त का उपदेश किया गया है।

प्रौढ़ानुभूति - 17 पद्यों के अन्तर्गत इसमें आत्म तत्व का वर्णन है।

ब्रह्मज्ञानावली माला- इसमें ब्रह्मज्ञान के स्वरूप का वर्णन सरल एवं सुबोधशैली में किया गया है।

ब्रह्मानुचिन्तन- इसमें 29 पद्यों में ब्रह्मस्वरूप का वर्णन हैं।

मणिरत्नमाला- इस प्रकरण में 32 श्लोकों में प्रश्नोत्तर के रूप से सुन्दर उपदेश किया गया है।

मायापंचक- इसके अन्तर्गत पाँच पद्यों में माया के स्वरूप का वर्णन है।

मुमुक्षपंचक- इस प्रकरण के अन्तर्गत पाँच शिखरिणी छन्दों में मुमुक्ष पुरुष के स्वरूप का सुन्दर वर्णन किया गया है।

योगतारावली- इसमें 29 पद्यों में हठयोग तथा राजयोग का प्रामाणिक वर्णन है।

लघुवाक्य वृत्ति - इस प्रकरण ग्रन्थ में 18 अनुष्टुप पद्यों में जीव और ब्रह्म की एकता का प्रतिपादन है। इस पर कई टीकाओं की रचना भी की गयी है। एक टीका शंकराचार्य की है और दूसरी टीका रामानन्द सरस्वती की।

वाक्यवृत्ति- इसमें 53 श्लोक हैं, इनमें तत् त्वं पदों के अर्थ वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ का

निरूपण किया गया है।

वाक्य सुधा- यद्यपि टीकाकार मुनिदास भूपाल ने इसकी रचना शंकराचार्य के द्वारा ही मानी है परन्तु ब्रह्मानन्द भारती के मत में यह ग्रन्थ स्वामी विद्यारण्य और उनके गुरु भारती के मत में यह ग्रन्थ स्वामी विद्यारण्य और उनके गुरु भारती तीर्थ की रचना है। इसके दूसरे टीकाकार विश्वेश्वर मुनि का मत है कि विद्यारण्य ही इसके रचयिता हैं। इन विभिन्न मतों से यह प्रतीत होता है कि यह प्रकरण ग्रन्थ शंकराचार्य की रचना नहीं है।[1]

विज्ञान नौका- इस प्रकरण ग्रन्थ में अद्वैत तत्व का निरूपण किया गया है।

विवेक चूड़ामणि- इसमें 581 पद्य हैं। जिनमें वेदान्त के तत्व का प्रतिपादन किया गया है। वेदान्त के प्रमुख सिद्धान्त 'ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या' विवेक चूड़ामणि के अन्तर्गत ही मिलता है।

वैराग्य पंचक- इस प्रकरण में पाँच श्लोकों में वैराग्य का अत्यन्त रमणीक वर्णन है।

शतश्लोकी- इस प्रकरण ग्रन्थ में 100 श्लोकों में वेदान्त के सिद्धान्त का विस्तृत विवेचन किया गया है।

सर्ववेदान्त सिद्धान्तसार संग्रह- इस ग्रन्थ में एक हजार छ : श्लोक हैं। गुरु शिष्य के संवाद के रूप में इसमें वेदान्त का सुन्दर वर्णन किया गया है।

सर्वसिद्धान्त सार संग्रह- इसमें बहुदर्शनों तथा अवैदिक दर्शनों का श्लोक बद्ध वर्णन है।

स्वात्मनिरूपण- गुरु शिष्य संवाद रूप से इसमें आत्म तत्व का विवेचन विस्तार से किया गया है।

स्वात्मप्रकाशिका- इसमें आत्म रूप का सुबोध तथा सुन्दर निरूपण मिलता है।

४. तन्त्र ग्रन्थ-

प्रपंचसार- शंकराचार्य रचित प्रपंचसार तन्त्र का एक प्रमुख ग्रन्थ है। इसके अतिरिक्त सौन्दर्य-लहरी, जिसका उल्लेख स्तोत्र ग्रन्थों के अन्तर्गत किया जा चुका है, भी एक तन्त्र ग्रन्थ ही है। जहाँ तक तन्त्र ग्रन्थ प्रपंच सार के शंकराचार्य द्वारा रचित होने का प्रश्न है, इस विषय में विद्वानों का सन्देह बना हुआ है। परन्तु तान्त्रिक परम्परा के अनुसार यह ग्रन्थ आदि शंकराचार्य की ही रचना सिद्ध होती है। इस ग्रन्थ के शंकराचार्य विरचित होने में अनेक प्रमाण हैं। प्रपंचसार के ऊपर पद्मपाद की विवरण टीका भी उपलब्ध है। इससे भी यही सिद्ध होता है कि यह ग्रन्थ शंकराचार्य द्वारा प्रणीत है।[2] इसके अतिरिक्त अमलानन्द ने वेदान्त कल्पतरु (1/3/33) में इसे आचार्य कृत मानते

---

1. शंकराचार्य उनके मायावाद तथा अन्य सिद्धान्तों का आलोचनात्मक अध्ययन लेखक डा० राममूर्ति शर्मा प्रकाशक साहित्य भण्डार सुभाष बाजार मेरठ पृष्ठ 26
2. शंकराचार्य उनके मायावाद तथा अन्य सिद्धान्तों का आलोचनात्मक अध्ययन। लेखक – डा० राममूर्ति शर्मा प्रकाशक साहित्य भण्डार सुभाष बाजार मेरठ से साभार!

हुए लिखा है-

तथा चावोचन्नाचार्याः प्रपंचसारे अवनिजलानलमारुत विहायसांशक्ति भिश्च तद् विम्बैः।

सारूप्यरुमात्मनश्च प्रतिनीत्वा तत्तदाशुजयति सुधीः।।

उक्त तर्कों के आधार पर 'प्रपंचसार' आदि शंकराचार्य की ही रचना सिद्ध होता है।

मतवाद- आचार्य शंकर अद्वैत सिद्धान्त के मात्र पोषक ही नहीं अपितु एक युग प्रवर्तक थे। उनका आविर्भाव जिस समय हुआ था, उस समय देश में बौद्ध, जैन, एवं कापालिकों का पूर्ण प्रभुत्व हो गया था,। सनातन एवं वैदिक धर्म का ह्रास हो रहा था, ऐसे संक्रमणकाल में ही आचार्य शंकर का प्राकट्य हुआ था। उन्होंने अपने अकाट्य तर्कों एवं मतवाद से परम पावन भारतभूमि में पुनः वैदिक, सनातन धर्म का ध्वज लहराया इसी कारण से बौद्ध जैन एवं कापालिक यहाँ से सदा सर्वदा के लिए लुप्त हो गए। अल्पायु में ही उन्होंने वह महत्वपूर्ण एवं श्लाघनीय कार्य सम्पन्न किया जो कोई अवतारी पुरुष ही कर सकता है। इसलिए ही लोग उन्हें भगवान् शंकर का साक्षात् अवतार मानते हैं। वे दार्शनिक जगत् के देदीप्यमान रत्न हैं। बड़े बड़े विद्वानों ने उन्हें 'दार्शनिक सार्वभौम' कहकर सम्मानित किया है। यहाँ उनके सिद्धान्त मतवाद का संक्षिप्ततः परिचय दिया जा रहा है।

आत्मा और अनात्मा- शंकराचार्य ने ब्रह्मसूत्र पर भाष्य लिखते समय सर्वप्रथम आत्मा और अनात्मा का विवेचन किया है। यह सम्पूर्ण सृष्टि द्रष्टा और दृश्य मुख्यतः इन दो भागों में विभक्त की जा सकती है। इसमें वहाँ एक तत्व जो सम्पूर्ण प्रतीतियों का अनुभव करने वाली है ओर दूसरा वह जो अनुभव का विषय है। इनमें समस्त प्रतीतियों के चरम साक्षी का नाम 'आत्मा' है तथा जो कुछ उसका विषय है वह अनात्मा है। आत्मतत्त्व नित्य, निश्चल निर्विकार, असंग, कूटस्थ एक और निर्विशेष है। बुद्धि से लेकर स्थूल भूत पर्यन्त जितना भी प्रपंच है उसका आत्मा से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। जीव अज्ञान के कारण ही देह और इन्द्रियादि से अपना तादात्म्य स्वीकार कर अपने को अंधा, काना, भूर्ख विद्वान, सुखी दुखी तथा कर्ता-भोक्त मानता है। इस प्रकार बुद्धि आदि के साथ जो आत्मा का तादात्म्य हो रहा है उसे आचार्य ने 'अध्यास' शब्द से निरूपित किया है। आचार्य के सिद्धान्तानुसार तो सम्पूर्ण प्रपंच की सत्यत्वप्रतीति अध्यास या माया के ही कारण भी है। इसी से अद्वैतवाद को अध्यासवाद या मायावाद भी कहते हैं।

मायावाद- आचार्य शंकर की मान्यतानुसार संसार में जो भी दृश्यवर्ग है वह सब माया के कारण ही विभिन्न सा प्रतीत होता है; वस्तुतः तो वह एक अखण्ड, शुद्ध, चिन्मात्र ही है। वेदान्त दर्शन के क्षेत्र में आचार्य शंकर और उनके दार्शनिक सिद्धान्त मायावाद का स्थान सर्वोपरि है। वेदान्त दर्शनाकाश के वे सूर्य हैं और उनका मायावाद उस सूर्य का अविद्या निवर्तक अद्भूत आलोक है।

ज्ञान और अज्ञान- सम्पूर्ण विभिन्न प्रतीतियों के स्थान में एक अखण्ड सच्चिदानन्द घन का अनुभव करना ही ज्ञान है तथा उस सर्वाधिष्ठान पर दृष्टि न देकर भेद में सत्यत्वबुद्धि करना ही

अज्ञान है। जैसे भँवर और जल में अभिन्नता है। गंगा में ही जल को एक घड़े में भर लिया जाय तो तत्वतः दानों जल एक ही है किन्तु घड़ा ही आवरण है जो दानों में भेद करता है इसी तत्व को समझना ही ज्ञान है। इसी प्रकार अनेक विध भेद संकुलित संसार केवल शुद्ध परब्रह्म ही है, उससे भिन्न कहीं कोई वस्तु नहीं है और वही आत्मा है। इस प्रकार का अभेद बोध ही ज्ञान कहलाता है। जब तक ऐसा बोध नहीं होता तब तक जीव आवागमन के चक्र से मुक्त नहीं होता; ऐसा बोध होते ही उसकी दृष्टि में जगत् का अत्यन्ताभाव हो जाता है ओर वह दूसरों की दृष्टि में शरीर रहते हुए भी स्वयं मुक्त हो जाता है।

साधन- शंकराचार्य ने श्रवण, मनन, ओर निदिध्यासन को ज्ञान का साक्षात् साधन स्वीकार किया है। किन्तु इनकी सफलता बह्मतत्व की जिज्ञासा होने पर ही है। तथा जिज्ञासा की उत्तपत्ति में प्रधान सहायक दैवी सम्पत्ति है। आचार्य का मत है कि जो मनुष्य विवेक, वैराग्य, शमादि षट्सम्पत्ति ओर मुमुक्षता, इन चार साधनों से सम्पन्न है, उसी को चित्तशुद्धि होने पर जिज्ञासा हो सकती है। इस प्रकार की चित्तशुद्धि के लिए निष्कामकर्मानुष्ठान बहुत उपयोगी है।

भक्ति- भगवान् शंकराचार्य के भक्ति स्तोत्रों को पढ़ने से उनके भक्त ह्रदय का अनुमान हो जाता है। उन्होंने भक्ति को ज्ञानोत्पत्ति का प्रधान साधन माना है। भक्ति का लक्षण करते हुए वे - विवेकचूड़ामणि में कहते हैं-

''स्वरूपानुसन्धानं भक्तिरित्यभिधीयते।'' अर्थात् अपने शुद्ध स्वरूप का स्मरण करना ही 'भक्ति' कहलाता है। आत्म जिज्ञासु के लिए वस्तुतः यह प्रधान भक्ति है ही। फिर भी उन्होंने सगुणोपासना की उपेक्षा नहीं की। प्रबोध सुधाकर में तो यहाँ तक लिखा है कि भगवान् श्री कृष्ण के चरणों की भक्ति के बिना चित्त शुद्ध हो ही नहीं सकता।

कर्म और सन्यास- आचार्य शंकर ने अपने भाष्यों में जगह जगह कर्मों के स्वरूप त्याग करने पर ही जोर दिया है। वे जिज्ञासु ओर बोधवान् दानों के लिए सर्वकर्मसंन्यास की आवश्यकता बतलाते हैं। उनके मत में निष्काम कर्म केवल चित्तशुद्धि का हेतु है। परमपद की प्राप्ति तो कर्मसन्यास पूर्वक श्रवण, मनन, और निदिध्यासन करके आत्मतत्व का बोध प्राप्त होने पर ही हो सकती है।

☐

शंकराचार्य के उत्तरवर्ती आचार्य

अद्वैत वेदान्त की आचार्य परम्परा को हम तीनों भागों में बाँट सकते हैं- उनके पूर्ववर्ती आचार्य मध्य में शंकराचार्य तथा उनके परवर्ती आचार्य। पूर्व के अध्याय में हमनें शंकराचार्य के पूर्ववर्ती आचार्यों तथा शंकराचार्य पर प्रकाश डाला। इस अध्याय में हम शंकराचार्य के उत्तरवर्ती आचार्यों का वर्णन करेंगे। यद्यपि शंकराचार्य के बाद वेदान्त दर्शन के क्षेत्र में आने वाले विद्वानों की संख्या गणनातीत है। किन्तु यहाँ कुछ प्रमुख आचार्यो का परिचय दिया जा रहा है।

आचार्य पद्मपाद- आचार्य पद्मपाद भगवान् शंकराचार्य के सर्वप्रथम शिष्य थे। उनके पद्मपाद नाम के बारे में एक कथा प्रचलित है। कहा जाता है कि आचार्य पद्मपाद अपने गुरु के बड़े भक्त थे। एक बार ये नदी के उस पार थे कि इनके गुरु ने इन्हें आवाज दी। गुरु की आवाज सुनते ही यह उनसे मिलने चल पड़े बिना इस बात का विचार किए ही कि बीच में नदी है। कहा जाता है कि नदी में जहाँ जहाँ ये पैर रखते थे वहाँ वहाँ एक कमल का पुष्प उग आता था और यह उसी पर पैर रखकर नदी के पार आ गए। गुरु ने इनकी गुरु भक्ति से अत्यन्त प्रसन्न होकर उन्हें गले से लगा लिया और तभी से इनका नाम पद्मपाद रख दिया। इनका पूर्व का नाम सनन्दन था, और इनका जन्म दक्षिण के चोल प्रदेश में हुआ था। शंकराचार्य ने इन्हें अपने पास ही रखकर परमतत्व का उपदेश दिया था तथा इन्हें तीन बार अपना भाष्य पढ़ाया था। कहा जाता है कि आचार्य पद्मपाद के मामा प्रभाकर मतावलम्बी थे और वे नहीं चाहते थे कि उनका भांजा शांकरमत का प्रचार करे। इसीलिए एक बार जब वे अपनी स्वलिखित पुस्तक अपने मामा के यहाँ रखकर तीर्थटन करने चले गए तो इनके मामा ने उस पुस्तक को ही जला दिया। वापस आने पर जब इन्होंने दुबारा वह ग्रन्थ लिखना चाहा तो इनके मामा ने इन्हें विष दे दिया जिससे यह विक्षिप्त से हो गए। बाद को इन्होंने सम्पूर्ण वृत्त से अपेन गुरु जी को अवगत कराया तो उन्होंने कहा कि 'एक बार तुमने अपनी पुस्तक मुझे सुनायी थी, और वह मुझे याद है, तुम लिखो, मै तुम्हें बताता हूँ। इस प्रकार वह पुस्तक पुनः लिख दी गयी। उनकी उस पुस्तक का नाम 'पंचपादिका' है। किन्तु यह ग्रन्थ पूरा उपलब्ध नहीं है। इस पुस्तक पर एक टीका प्रकशात्म मुनि की मिलती है जिसका नाम 'पंचपादिका विवरणकी' है। तथा इस पर भी एक टीका अखण्डानन्द मुनि ने लिखी है जिसका नाम तत्वदीपन है।

आचार्य पद्मपाद को आचार्य शंकर ने गोवर्धन मठ पुरी का अध्यक्ष नियुक्त किया था। शंकराचार्य के तिरोधान के बाद इन्होंने यावज्जीवन अद्वैत मत का प्रचार किया।

पंचपादिका के अतिरिक्त आत्मानात्मविवेक, प्रपंचसार, तथा सुरेश्वराचार्य कृत लघुवार्तिक की टीका ये तीन ग्रन्थ और भी पद्मपादाचार्य के लिखे मिलते हैं। आचार्य पद्मपाद के शिष्यों से ही दशनामी संन्यासियों की 'आश्रम और 'अरण्य' नाम की शाखाएँ निकली हैं।

श्री सुरेश्वराचार्य (मण्डन मिश्र)

श्री सुरेश्वराचार्य (मण्डन मिश्र) का जन्म रेवा नदी के तटवर्ती महिष्मती नामक नगरी में हुआ था। विद्वानों का मत है कि प्राचीन महिष्मती नगरी राजगृह या उसके आस-पास भागलपुर में थी, किन्तु कुछ विद्वानों का मत है कि महिष्मती नगरी नर्मदा के तट पर अवस्थित थी। जो वर्तमान में इन्दौर है। महिष्मती को वहीं अवस्थित बताया जाता है।

मण्डन मिश्र अपने समय के उद्‌भट विद्वान और मीमांसक थे। वे कुमारिल भट्ट के शिष्य थे। प्रयाग में शंकराचार्य से कुमारिल भट्ट की मुलाकात होने पर कुमारिल भट्ट ने ही शंकराचार्य को मण्डन मिश्र के पाण्डित्य का परिचय दिया था। उनसे शास्त्रार्थ में पराजित होने के बांद मण्डन मिश्र आचार्य शंकर के शिष्य हो गए और सुरेश्वराचार्य नाम से जगत प्रसिद्ध हुए। आचार्य शंकर ने उन्हें श्रृंगेरी पीठ का पीठाधीश्वर बनाया। श्रृंगेरी मठ के प्राचीन अभिलेखों से ऐसा विदित होता है कि वे आठ सौ वर्ष तक जीवित रहे, परन्तु इसका अन्यत्र कहीं और प्रमाण नहीं मिलता।

सुरेश्वराचार्य आचार्य शंकर के शिष्यों में सर्वाधिक प्रकाण्ड विद्वान् थे। यही कारण है कि उनके परवर्ती आचार्यो जैसे चित्सुख, विद्यारण्य, सदानन्द, गोविन्दानन्द, अप्पय दीक्षित, प्रभृति विद्वानों ने उनके वाक्यों को प्रमाण रूप में जगह-जगह उद्धृत किया है। सन्यास ग्रहण के पूर्व मण्डन मिश्र ने आपस्तम्बीय, मण्डनकारिका भावना विवेक,और काशी मोक्ष निर्णय नामक ग्रन्थों की रचना की थी। सन्यास लेने के उपरान्त इन्होंने अद्वैत वेदान्त पर तैत्तिरीय, श्रुतिवार्तिक नैष्कर्म्य सिद्धि, इष्टसिद्धि, पंचीकरण वार्तिक, वृहदारण्यकोपनिषद् वार्तिक, ब्रह्मसिद्धि, ब्रह्मसूत्र भाष्यवार्तिक, विधिविवेक, मानसोल्लास, लघु-वार्तिक, वार्तिकसार, और वार्तिक सार संग्रह आदि ग्रन्थ लिखे। शांकर मत को प्रतिष्ठापित करने एवं लोक प्रचारित करने में सुरेश्वराचार्य का नाम अग्रगण्य है।

सर्वज्ञात्म मुनि- आचार्य शंकर के प्रधान शिष्यों में पद्‌मपादाचार्य, और सुरेश्वराचार्य के अतिरिक्त अन्य किसी के बारे में कुछ पता नहीं चलता। शंकराचार्य द्वारा स्थापित चारों पीठों पर अधिष्ठित आचार्यो में प्रायःआठवीं और नवीं शताब्दी तक किसी बड़े आचार्य का पता नहीं चलता, किन्तु आठवीं शदी के उत्तरार्द्ध में श्रृंगेरी पीठ पर सर्वज्ञात्ममुनि के पीठाधीश्वर होने का वर्णन मिलता है। इनका दूसरा नाम नित्य बोधाचार्य था। इन्होंने शांकर मत को परिस्फुट करने के उद्‌देश्य से एक ''संक्षेप शारीरक'' नाम से व्याख्या ग्रन्थ लिखा। इस ग्रन्थ में उन्होंने अपने गुरु का नाम देवेश्वराचार्य लिखा है। टीकाकार मधुसुदन सरस्वती ओर रामतीर्थ ने देवेश्वराचार्य का अर्थ सुरेश्वराचार्य किया है। यद्यपि सुरेश्वराचार्य और सर्वज्ञात्ममुनि के काल में बड़ा अन्तर है किन्तु विद्वज्जन आज भी देवेश्वराचार्य को सुरेश्वराचार्य ही मानते हैं। श्रृंगेरी पीठ से प्राप्त अभिलेखों के आधार पर विद्वानों ने सर्वज्ञात्ममुनि का काल निर्धारण 814 से 905 ई० के बीच किया है।

आचार्य वाचस्पति मिश्र- आचार्य वाचस्पति मिश्र का जन्म नवीं शताब्दी में मिथिला में

हुआ था। यह सर्व दर्शनविद् एवं प्रकाण्ड विद्वान् थे। इन्होंने 'न्याय सूची निबन्ध' नामक ग्रन्थ की रचना विक्रमसंवत् 898 (841) ई० में की थी इसी से इनका जन्मकाल नवीं शताब्दी माना जाता है। शांकर भाष्य पर इन्होंने 'भामती' नामक टीका लिखी है। शांकर मत समझने के लिए इसका अध्ययन अनिवार्य माना जाता है। कहा जाता है कि 'भामती' उनकी पत्नी का नाम था। वह परम् साध्वी,सती, एवं पतिपरायणा थी। उस भारतीय ललना ने अनेक वर्षों तक अपने पति की जो एकान्त सेवा की थी उससे प्रसन्न होकर आचार्य मिश्र ने अपनी टीका का नाम 'भामती' रखकर उसे अमर बना दिया। यद्यपि भामती एक टीका है, किन्तु यह स्वतन्त्र ग्रन्थ का महत्व रखती है।

वाचस्पति मिश्र ने 'भामती' के अतिरिक्त सुरेश्वर कृत ब्रह्मसिद्धि पर 'ब्रह्मतत्वसमीक्षा सांख्यकारिका पर 'तत्वकौमुदी' पातंजल दर्शन पर 'तत्ववैशारदी',न्यायदर्शन पर 'न्यायवार्त्तिक तात्पर्य' पूर्व मीमांसा दर्शन पर 'न्यायसूची निबन्ध' भाट्टमत पर 'तत्व बिन्दु' तथा मण्डन मिश्र के विधि विवेक पर 'न्याय कणिका' नामक टीका की रचना की। इनके प्रकाण्ड वैदूष्य को देखकर लोगों में यह विश्वास घर कर गया कि सुरेश्वराचार्य ने ही वाचस्पति मिश्र के रूप में पुनः जन्म लिया था।

श्री कृष्णमिश्र यति- प्रायः नवीं दसवीं शताब्दी तक वेदान्त की चर्चा विद्वानों तक ही सीमित थी। परन्तु ज्यों ज्यों इसके विभिन्न मतवाद विस्तारलाभ करते गए त्यों त्यों इस चर्चा का क्षेत्र बढ़ता गया और सर्वसाधारण में भी इस चर्चा को फैलाने की चेष्टा होने लगी। इस दिशा में पुराणों ने भी कुछ कुछ कार्य किया था। परन्तु ग्यारहवीं शताब्दी में नाटक काव्यादि के रूप में वेदान्त तत्व को समझाने का प्रयास आरम्भ हुआ। नाटक और काव्य सर्व साधारण पर गद्यादि की अपेक्षा अधिक प्रभाव डालते हैं और सुबोध भी होते हैं। अतएव इसी समय अद्वैत मत का प्रचार करने के उद्देश्य से श्री कृष्ण मिश्र ने 'प्रबोध चन्द्रोदय' नामक नाटक की रचना की। ये प्रायः ग्यारहवीं शताब्दी के शेष भाग में हुए थे। ये एक संन्यासी थे। इनके ग्रन्थ से उनकी कवित्व शक्ति तथा दार्शनिक प्रतिभा का परिचय मिलता है। इससे अधिक इनके जीवन के विषय में कुछ ज्ञात नहीं है।

प्रकाशात्म यति- प्रकाशात्मयति जैसा कि यति नाम से ही प्रतीत होता है एक सन्यासी थे ओर इनके गुरु का नाम श्रीमत् अनन्यानुभव था। इनके ग्रन्थों से पता चलता है कि गुरु को ब्रह्म साक्षात्कार हुआ था। इन्होंने अपने गुरु से ब्रह्मविद्या प्राप्त कर ग्रन्थ रचना की थी। ये उद्भट विद्वान् थे तथा इनका दूसरा नाम प्रकाशानुभव था। इनका आविर्भाव काल दसवीं शताब्दी के बाद और तेरहवीं शताब्दी के पूर्व का माना जाता है। ग्यारहवीं शताब्दी में रामानुजाचार्य का आविर्भाव हुआ था तथा आचार्य रामानुज ने शांकर मत का जोरदार ढंग से खण्डन किया था। उस समय शांकर मत को पुष्ट करने की चेष्टा श्री प्रकाशात्म यति ने की थी। पद्मपादाचार्य कृत 'पंचपादिका' पर इनकी 'पंचपादिका विवरण' टीका मिलती है। अद्वैत जगत में इस टीका की बड़ी मान्यता है। इनके बाद के आचार्यों ने इनके मत को प्रमाण रूप में उद्धृत किया है जिससे इनकी विद्वता का परिचय मिलता है।

आचार्य श्री अद्वैतानन्द बोधेन्द्र

कौडिन्य गोत्रीय आचार्य श्री अद्वैतानन्द बोधेन्द्र का पूर्वाश्रम का नाम सीता नाथ था। इनके पिता का नाम प्रेमनाथ और माता का नाम पार्वती देवी था। इनका जन्मकाल 1149 ई० के लगभग माना जाता है। इनका जन्म कावेरी नदी के तट पर पंचनद नामक स्थान में हुआ था। मात्र सत्रह वर्ष की अल्पायु में इन्होंने सन्यास ग्रहण कर लिया था। इनके गुरु का नाम भूमानन्द सरस्वती या चन्द्रशेखरेन्द्र सरस्वती था। ये कांचीकाम कोटि पीठ के पीठाधीश थे। सन्न्यास लेने के पूर्व ही अद्वैतानन्द ने न्याय और मीमांसा में अच्छी ख्याति प्राप्त कर ली थी। इनके गुरु ने इनकी योग्यता देखकर इन्हें कांची काम कोटि का पीठाधीश मनोनीत किया था। इसके बाद आचार्य अद्वैतानन्द काशी (वाराणसी) अध्ययन करने के लिए चले गए थे और वहाँ उन्होंने रामानन्द सरस्वती से अद्वैत विद्या का गहन अध्ययन किया था। स्वामी रामानन्द सरस्वती ने ही इन्हें शारीरक सूत्र भाष्य पढ़ाया था। अध्ययन के उपरान्त इन्होंने सम्पूर्ण भारत का भ्रमण किया ओर विरोधी मतवालों से इन्होंने शास्त्रार्थ कर उन्हें पराजित किया। लगभग 33 वर्षों तक वे कांची काम कोटि पीठ के पीठाधीश्वर रहे और पचास वर्ष की अवस्था में समाधि ग्रहण की। इन्होंने अनेक ग्रन्थ लिखे जिनके नाम है– ब्रह्म विद्याभरण, शान्ति विवरण, ओर गुरु प्रदीप। प्रथम ग्रन्थ में 'ब्रह्मसूत्र' के चारों अध्यायों की व्याख्या है। यह ग्रंथ ' शांकर भाष्य' की वृत्ति के रूप में विख्यात है।

श्री हर्ष मिश्र- श्री हर्ष मिश्र का काल बारहवीं शताब्दी माना जाता है। इनके पिता का नाम श्री हीर पण्डित तथा माता का नाम मामल्ल देवी था। आद्य शंकराचार्य तथा सुरेश्वराचार्य के बाद बारहवीं सदी तक प्रायः जितने आचार्य हुए किसी ने भी कोई प्रमेय बहुल प्रकरण ग्रन्थ नहीं लिखा। सबों ने प्रायः व्याख्या या वृत्ति ही लिखी। किन्तु बारहवीं शताब्दी में श्री हर्ष मिश्र ने अन्य मतों के खण्डन के लिए एक प्रकरण गन्थ लिख कर अद्वैत जगत् में नवयुग उपस्थित कर दिया। बाद में इनके देखा देखी इन समसामयिक आनन्द बोध भट्टारकाचार्य तथा बाद में चित्सुखाचार्य आदि ने भी प्रकरण ग्रन्थ की रचना की। श्री हर्ष दार्शनिक और कवि दानों थे। जन श्रुति है कि इनके पिता भी बड़े विद्वान् और कवि थे, किन्तु राजसभा में एक बार किसी पण्डित ने उन्हें पराजित कर दिया था जिससे वे अत्यन्त दुखी हो पारम्बा भागवती की उपासना करने लग गए थे। भगवती ने प्रसन्न होकर उन्हें एक दिग्विजयी पुत्र की प्राप्ति का वर दिया था जिसके कुछ समय बाद ही श्री हर्ष का जन्म हुआ था। श्री हीर पण्डित शास्त्रार्थ में अपने पराभव को यावज्जीवन भुला नहीं पाए थे और अपने अन्तिम काल में उन्होंने अपने पुत्र से अपने पराभव का वृत्तान्त बताकर उस पण्डित को शास्त्रार्थ में पराजित करने को कहा। पिता की मृत्यु के बाद श्री हर्ष ने अनेक विद्वानों के पास जाकर गहन अध्ययन किया तथा गुरु से ''चिन्तामणि'' मन्त्र की दीक्षा लेकर माँ भगवती की गहन आराधना की और उनसे सभी विधाओं में पारंगत होने का वर प्राप्त किया। इसके अनन्तर वे कन्नौज की राजसभा में गए जहाँ

उन्होंने उस विद्वान को शास्त्रार्थ में पराजित किया था। इनके बुद्धि कौशल से राजा बड़ा प्रसन्न हुआ और इनका सम्मान कर इन्हें राज्याश्रय प्रदान किया। इन्होंने अपने एक ग्रन्थ में उस राजा के परिचय का कुछ उल्लेख भी किया है।

श्री हर्ष मिश्र ने अपने मत के प्रचार एवं पुष्टि के लिए अनेक ग्रन्थ लिखे जिसमें प्रमुख हैं- 'खण्डन खण्ड खाद्य' इसका दूसरा नाम अर्निवचनीय- सर्वस्व है। इनका एक कवित्व ग्रन्थ नैषधं चरित' है। जिसमें उनके कवित्व शक्ति एवं प्रगाढ़ पाण्डित्य का दर्शन होता है। इसके अतिरिक्त अर्णव वर्णन, शिवशक्ति- सिद्धि, साहसांक चम्पू, छन्दः प्रशस्ति,विजय प्रशस्ति गौडोवींश कुल प्रशस्ति, ईश्वराभिसन्धि और स्थैर्यविचारण प्रकरण आदि इनके प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं।

श्री आनन्दबोध भट्टारकाचार्य– श्री आनन्द बोध भट्टारकाचार्य सन्यासी थे। इन्होंने अपने 'न्यायमकरन्द' नामक ग्रन्थ में आचार्य वाचस्पति मिश्र के नाम का उल्लेख किया है और विवरणाचार्य प्रकाशात्म यति के मत का अनुवाद भी किया है। श्री चित्सुखाचार्य ने इस ''न्याय मकरन्द'' ग्रन्थ की व्याख्या लिखी है। चित्सुखाचार्य का काल तेरहवीं शताब्दी का था तथा वाचस्पति मिश्र का काल दशवीं शताब्दी और प्रकाशात्म यति का काल ग्यारहवीं शताब्दी था। इससे सिद्ध होता है कि श्री आनन्द बोध भट्टारकाचार्य लिखित तीन ग्रन्थ उपलब्ध हैं न्यायमकरन्द, प्रमाणमाला ओर न्यायदीपावली। ये तीनों ही ग्रन्थ अद्वैत वेदान्त पर हैं। 'न्याय मकरन्द' एक संग्रह ग्रन्थ होते हुए भी अद्वैत मत का प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है।

आचार्य अमलानन्द- आचार्य अमलानन्द दक्षिण के देवगुरु राज्य के निकट के रहने वाले और अनुभवानन्द के शिष्य थे। इनका आविर्भाव तेरहवीं सदी के अन्त का माना जाता है। ये यादववंशीय राज महादेव और राजा रामचन्द्र के समकालीन थे। राजा महादेव का शासन काल सन् 1260 से 1271 के बीच का था। अमलानन्द ने अपने ग्रन्थ 'वेदान्त कल्पतरु' जो लिखा है उससे यह प्रतीत होता है कि यह ग्रन्थ उक्त दोनों यादववंशीय राजाओं के शासन काल में लिखा गया था। आचार्य अमलानन्द अद्वैत मत के प्रबल समर्थक थे। उनके लिखे तीन ग्रन्थ मिलते हैं। पहला 'वेदान्त कल्पतरु' है, जिसमें वाचस्पति मिश्र की 'भामती' टोका की व्याख्या की गयी। है। इनका दूसरा ग्रन्थ है 'शास्त्रदर्पण'। इसमें ब्रह्मसूत्र के अधिकरणों की व्याख्या की गयी है। तीसरा ग्रन्थ है 'पंचपादिका दर्पण' । इसमें पद्मपादाचार्य की 'पंचपादिका'की व्याख्या है। इन ग्रन्थों के भावन से अमलानन्द के प्रकाण्ड वैदूष्य का पता चलता है।

श्री चित्सुखाचार्य- आचार्य चित्सुख का काल तेरहवीं शताब्दी माना जाता है। बारहवीं शताब्दी में हर्ष ने न्याय मत का खण्डन कर अद्वैत वेदान्त को प्रतिष्ठापित किया था, श्री चित्सुखाचार्य ने पुनः तेरहवीं शताब्दी में इस परम्परा को आगे बढ़ाकर पुनः अद्वैत वेदान्त की पुष्टि की और उसका प्रचार प्रसार किया। इनके ग्रन्थ 'तत्वप्रदीपिका' के मंगलाचरण से यह पता चलता है कि इनके गुरु का नाम 'ज्ञानोत्तम' था। इनकी कृति तत्व प्रदीपिका का दूसरा नाम 'चित्सुखी' भी

है। यह कृति आनन्दबोध के 'न्याय मकरन्द' की टीका है। इसके अतिरिक्त अन्य कृतियां है- 'भाव प्रकाशिका'' जो 'शारीरक भाष्य' की टीका है, तथा 'भावतत्व प्रकाशिका' जो 'नैष्कर्म्य सिद्धि' की टीका है। आचार्य चित्सुख अद्वैत मत के प्रकाण्ड विद्वान थे। इनके पश्चातवर्ती आचार्यों ने प्रमाण स्वरूप इनके मत का जगह जगह उल्लेख किया हैं

आचार्य भारती तीर्थ- आचार्य भारती तीर्थ शांकर मत के अनुयायी थे। पहले ऐसी मान्यता थी कि भारती तीर्थ और विद्यारण्य दानों एक ही व्यक्ति हैं, किन्तु अनेक ग्रन्थों के प्रकाश में आ जाने से यह बात सिद्ध हो गयी कि विद्यारण्य, भारतीतीर्थ के शिष्य थे और भारती तीर्थ के गुरु का नाम 'विद्यातीर्थ' था। इससे पता चलता है कि भारतीतीर्थ का आविर्भाव काल तेरहवीं शताब्दी में था। आचार्य भारती तीर्थ ने 'वैयासिक न्यामाला' नामक ग्रन्थ का प्रणयन किया था। यह ग्रन्थ शांकर मत की व्याख्या करने में बड़ा ही उपयोगी है। ग्रन्थ की भाषा प्रांजल, सुबोध एवं सरल है, तथा यह पद्य शैली में लिखा गया है।

आचार्य शंकरानन्द - आचार्य शंकरानन्द अद्वैत वेदान्त के उद्भट् विद्वान् थे। शांकर मत को पुष्ट एवं प्रचारित करने के लिए उन्होंने 'ब्रह्मसूत्र दीपिका' गीताटीका (शंकरानन्दी) ओर अठारह उपनिषद् ग्रन्थों की टीका लिखी थी। इसके अतिरिक्त इनके नाम से एक 'आत्मपुराण'नामक ग्रन्थ भी मिलता है। विद्यारण्य स्वामी ने अपने 'पंचदशी' तथा 'विवरण प्रमेय संग्रह' ग्रन्थ के मंगलाचरण में आचार्य शंकरानन्द को गुरु रूप में स्मरण एवं प्रणाम किया है इससे प्रतीत होता है कि आचार्य शंकरानन्द, विद्यारण्य स्वामी के विद्यागुरु थे, जिससे इनका स्थिति काल तेरहवी शदी का अन्त और चौदहवीं शदी का प्रारम्भ सिद्ध होता हैं

श्री माधवाचार्य या विद्यारण्य मुनि- बहुमुखी प्रतिभा के धनी, कवि, दार्शनिक, राजनीतिज्ञ एवं तत्वनिष्ठ श्री माधवाचार्य का जन्म तुंगभद्रा नामक नदी के तट पर अवस्थित हाम्पी नामक नगर के निकट एक गाँव में हुआ था। उनके पिता का नाम मायण, माता का नाम श्रीमती था। इनके दो भाई सायण ओर भोगनाथ थे। सायण इनका कुल नाम था। प्रसिद्ध वेद सायणाचार्य इनके सगे भाई सायण ही थे। यह भरद्वाज गोत्र , बोधायन सूत्र और यजुर्वेदी ब्राह्मण कुल में पैदा हुए थे। इनका स्थिति काल तेरहवीं सदी सिद्ध होता है।

श्री माधवाचार्य सौ वर्षों की पूर्णायु को प्राप्त थे, तथा सन्यास ग्रहण के उपरान्त वे श्रृंगेरी मठ के शंकराचार्य पद पर अभिषिक्त हो पीठासीन हुए थे। वे विजयनगर' राज्य के संस्थापक थे। 1335 या 1336 ई० के लगभग विजयनगर के राजसिंहासन पर महाराज वीर बुक्क को अभिषिक्त कर स्वयं उनके प्रधानमंत्री बने। वे उच्चकोटि के राजनीतिज्ञ एवं प्रबन्ध पटु थे। अपने राजनीतिक कौशल से ही इन्होंने ''वियजनगर'' राज्य की सीमा श्री वृद्धि की थी।

श्रीमाधवाचार्य, सन्यास ग्रहण के उपरान्त विद्वारण्य मुनि के नाम से प्रसिद्ध हुए। श्री विद्यातीर्थ, भारतीतीर्थ एवं शंकरानन्द ये तीनों ही आचार्य, श्री माधवाचार्य के गुरु थे, और सुप्रसिद्ध

विशिष्टाद्वैताचार्य श्री वेदान्त देशिकाचार्य उनके समकालीन तथा बालसखा थे। उन्होंने वेद, व्याकरण, पुराण, उपनिषद् और जीवनी आदि अनेक विषयों पर 16 ग्रन्थ लिखे जिनके नाम है ----

माधवीय धातुवृत्ति, जैमिनीय न्याय माला, ओर उसकी टीका, पराशर माधव, सर्वदश्नन संग्रह, विवरण प्रमेय संग्रह, सूत संहिता की टीका, पंचदशी,अनुभूति प्रकाश, अपरोक्षानुभूति की टीका, जीवन्मुक्ति विवेक, ऐतरेयोपनिषद्दीपिका, तैत्तरीयोपनिषद्दीपिका, छान्दोग्योपनिषद्दीपिका, वृहदारण्यकवर्तिकसार, शंकर दिग्विजय, और काल माधव।

आनन्द गिरि-- आनन्द गिरि अद्वैतवेदान्त के निष्णात टीकाकार थे। इनका पूर्वाश्रम का नाम आनन्द ज्ञान था। इनके गुरु का नाम श्री शुद्धानन्द स्वामी था जो सम्भवतः श्रृंगेरी पीठ के शंकराचार्य थे और इसी कारण कतिपय लोग इन्हें शंकराचार्य का शिष्य मानते थे किन्तु ग्रन्थों में प्राप्त साक्ष्यों के आधार पर उनका काल पन्द्रहवीं शताब्दी सिद्ध होता है। 'शारीरक भाष्य' पर लिखा हुआ इनका 'न्याय निर्णय ग्रन्थ' पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका है। इसके अतिरिक्त इन्होंने शंकर दिग्विजय,नामक एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ का भी प्रणयन किया था। उन्होंने भगवान् शंकराचार्य कृत उपनिषद्भाष्य,गीता भाष्य, शारीरिक भाष्य, ओर शतश्लोकी पर तथा श्री सुरेश्वराचार्य कृत तैत्तिरीयोपनिषद्वार्त्तिक एवं वृहदारण्यकोपनिषद्वार्तिक पर टीकाएँ लिखी है।

प्रकाशानन्द-- आचार्य प्रकाशानन्द, आचार्य ज्ञानानन्द के शिष्य थे, जो कि अप्पय दीक्षित के पूर्ववर्ती थे। इनका स्थिति काल 15वीं शताब्दी के आस पास सिद्ध होता है। इन्होंने 'वेदान्त सिद्धान्त मुक्तावली' नामक ग्रन्थ लिखा जो वेदान्त का प्रामाणिक एवं सुप्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसकी विवेचन शैली बहुत युक्तियुक्त, पाण्डित्यपूर्ण और प्रांजल है। इस पर अप्पय दीक्षित ने 'सिद्धान्त दीपिका' नामक एक 'वृत्ति' लिखी है। इस ग्रन्थ का अंग्रेजी में भी अनुवाद हो चुका है।

अखण्डानन्द- आचार्य अखण्डानन्द का स्थितिकाल पन्द्रहवीं शताब्दी ही माना जाता है। इनके गुरु का नाम अखण्डानुभूति था। इनके द्वारा पंचपादिका विवरण के ऊपर लिखित 'तत्वदीपन' नामक निबन्ध एक प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है।

मल्लनाराध्य-- श्री मल्लनाराध्य का जन्म 16वीं शदी में दक्षिण में हुआ था। उन्होंने 'अद्वैतरत्न' ओर 'अभेदरत्न' नामक दो प्रकरण ग्रन्थ लिखे हैं तथा अपने ही ग्रन्थ 'अद्वैतरत्न' के ऊपर 'तत्वदीपन' नामक टीका भी लिखी है।

नृसिंहाश्रम- स्वामी नृसिंहाश्रम जी प्रख्यात दार्शनिक एव उद्भट् विद्वान् थे। उनकी गणना अद्वैत सम्प्रदाय के प्रमुख आचार्यो में की जाती है। उनके 'तत्वविवेक' नामक ग्रन्थ की पुष्पिका से यह ज्ञात होता है कि उनका समाप्तिकाल संवत् 1604 वि० अर्थात् 1547 ई० है। इससे यह अनुमान लगाया जाता है कि उनका जीवन काल 16वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध रहा होगा। स्वामी नृसिंहाश्रम से अप्पयदीक्षित, बहुत प्रभावित थे। इनके ग्रन्थों के नाम हैं' भावप्रकाशिका' (पंचदशी

विवरणकी टीका), तत्वविवेक, भेदाधिकार, अद्वैतदीपिका, वैदिक सिद्धान्त संग्रह, ओर 'तत्वबोधिनी' (सर्वज्ञात्म मुनिकृत 'संक्षेप शारीरक' की व्याख्या)।

नारायणाश्रम-- श्री नारायणाश्रम जी आचार्य नृसिंहाश्रम के शिष्य थे। अतः वे उन्हीं के समकालीन थे। उन्होंने अपने गुरु के 'भेदधिक्कार' तथा 'अद्वैतदीपिका' नामक ग्रन्थों पर टीका लिखी है जिसका नाम उन्होंने ' भेदधिक्कारसत्क्रिया' रखा है। इस पर एक ' भेदधिक्कारसत्क्रियोज्चला' नामकी एक और टीका लिखी गयी।

रंगराजाध्वरी-- रंगराजाध्वरी कांची के रहने वाले थे। इनका दूसरा नाम वक्षः स्थलाचार्य था। इनके पिता का नाम आचार्य दीक्षित था। ये विजयनगर के राजा कृष्णदेवराज के सभापण्डित थे। प्रसिद्ध विद्वान् अप्पय दीक्षित इनके पुत्र थे। इन्होंने 'अद्वैतविद्यामुकुर' एवं 'विवरण दर्पण' नामक ग्रन्थों का प्रणयन किया। अपने ग्रन्थों में इन्होंने न्याय वैशेषिक एवं सांख्यादि मतों का खण्डन कर अद्वैत मत की स्थापना की है। इनका पाण्डित्य आसाधारण कोटि का था।

अप्पय दीक्षित- संस्कृत साहित्य में अप्पय दीक्षित का नाम बड़े सम्मान के साथ लिया जाता है। वे आलंकारिक,वैयाकरण और प्रख्यात दार्शनिक थे। विद्वता की दृष्टि से वे वाचस्पति मिश्र, श्री हर्ष एवं मधुसूदन सरस्वती के समकक्ष ठहरते हैं। वे विश्व साहित्य के एक देदीप्यमान नक्षत्र थे। इनका जन्म 1550 ई० में हुआ था। 72 वर्ष की उम्र में सन् 1622 में इनके अन्दर चमत्कारिक रूप से साहित्यिक प्रतिभा का विकास हुआ। अप्पय दीक्षित ने अपने पिता रंगराजाध्वरी से ही वेदान्त की शिक्षा प्राप्त की थी। उनके छोटे भाई का नाम बच्चा दीक्षित था। अप्पय दीक्षित मुगल बादशाह अकबर तथा जहाँगीर के शासनकाल में हुए थे। उन्होंने विभिन्न विषयों पर लगभग 104 विद्वतापूर्ण ग्रन्थ लिखे। ये ग्रन्थ काव्य शास्त्र, कोश, व्याकरण, मीमांसा, वेदान्त, मध्वकत, रामानुजमत, श्रीकण्ठमत, ओर शैव दर्शन आदि विभिन्नं विषयों से सम्बद्ध हैं। वेदान्त पर लिखे गए उनके ग्रंथों 'परिमल' न्याय रक्षामणि' 'सिद्धान्तश्लेष संग्रह' और न्याय मंजरी का प्रमुख स्थान है। 'ब्रह्मसूत्र' के मध्व, रामानुज तथा श्रीकण्ठ आदि आचार्यों के भाष्यों पर अप्पय दीक्षित ने क्रमशः न्यायमुक्तावली, नियमयूथमालिका, ओर शिवार्कमणिदीपिका' आदि प्रमुख ग्रन्थ लिखे। इसके अतिरिक्त शिवा शिवकर्णामृत, रामायण तात्पर्य संग्रह, भारततात्पर्य संग्रह, शिवाद्वैतविनिर्णय, पंचरत्नस्तव, ओर उसकी व्याख्या, शिवानन्दलहरी, दुर्गाचन्द्रकलास्तुति, और उसकी व्याख्या, कृष्णध्यान पद्धति, और उसकी व्याख्या तथा आत्मार्पण आदि निबन्ध भी उनकी उत्कृष्ट कृतियाँ हैं।

भट्टोजिदीक्षित-- आचार्य भटटोजिदीक्षित– आचार्य भटटोजिदीक्षित ख्याति लब्ध वैयाकरण थे। उनके द्वारा विरचित 'सिद्धान्त कौमुदी और प्रौढ़मनोरमा व्याकरण के अद्वितीय ग्रन्थ हैं। इनके व्याकरण गुरु श्री कृष्ण दीक्षित थे तथा वेदान्त गुरु अप्पय दीक्षित थे। और यही इनका स्थितिकाल भी था। उपर्युक्त दो व्याकरण ग्रन्थों के अतिरिक्तउनके अन्य ग्रन्थ हैं–'शब्द कौस्तुभ', वैयाकरण भूषण, तत्वकौस्तुभ और वेदान्त तत्व विवेक टीका विरण।

सदाशिव ब्रह्मेन्द्र-- सदाशिव ब्रह्मेन्द्र, भटटोजिदीक्षित के समकालीन थे। ये सन्यासी थे ओर सम्भवत: कांची कामकोटि पीठ के अधीश्वर थे; क्योंकि इनके रचे हुए 'गुरुरत्नमालिका' नामक ग्रन्थ में ब्रह्मविद्याभरणकार स्वामी अद्वैतानन्द का उल्लेख है, और वे कांची पीठ के अधीश्वर थे। स्वामी सदाशिव ब्रह्मेन्द्र ने अद्वैत विद्या विलास, बोधार्यात्मनिर्वेद, गुरुरत्नमालिका, और ब्रहमकीर्तन तरंगिणी आदि गन्थों की रचना की थी, किन्तु ये सभी ग्रन्थ अप्रकाशित ही हैं।

नीलकण्ठ सूरि-- आचार्य नीलकण्ठ सूरि का जन्म सोलहवीं शताब्दी में महाराष्ट्र प्रदेश में हुआ था। वे गोदावरी के पश्चिमी तट पर कर्पूर नामक स्थान में रहते थे। इनके पिता का नाम गोविन्द सूरि था, ओर ये चतुर्धन वंश में उत्पन्न हुए थे। इनकी महाभारत पर लिखी टीका 'भारतभावदीप' नाम से विख्यात है इसके अतिरिक्त इनकी और कोई कृति नहीं मिलती। इनकी कृति से पता चलता है कि यह अद्वैतवादी थे।

सदानन्द योगीन्द्र-- स्वामी श्री सदानन्द योगीन्द्र वेदान्तसार के रचयिता हैं। वेदान्तसार के ऊपर श्री नृसिंह सरस्वती की 'सुबोधिनी' नामक टीका है। यह टीका सम्वत् 1518 (शक) में लिखी गयी थी, जिससे यह सिद्ध होता है कि स्वामी सदानन्द योगीन्द्र का स्थति काल 16वीं शताब्दी का प्रारम्भ था। इनका ग्रन्थ वेदान्त सार वेदान्त के क्षेत्र में बड़ा ही लोकप्रिय ग्रन्थ है। इस पर कई टीकाएँ लिखी गयीं और इसके अतिरिक्त' शंकर दिग्विजय' नामक ग्रन्थ रचयिता भी स्वामी सदानन्द योगीन्द्र को ही माना जाता हैं

नृसिंह-- श्री नृसिंह सरस्वती वेदान्तसार की टीका 'सुबोधिनी' के रचयिता हैं। यह टीका उन्होंने शक् संवत 1518 अर्थात् ई० सन् 1516 में लिखी थी। अतएव उनका स्थिति काल सोलहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध होना चाहिए। सुबोधिनी की भाषा बहुत सुन्दर है। इससे उनकी उच्चकोटि की प्रतिभा का परिचय मिलता है। उनके गुरू का नाम श्री कृष्णानन्द स्वामी था।

मधुसूदन सरस्वती- आचार्य मधुसूदन सरस्वती अद्वैत सम्प्रदाय के प्रधान आचार्यों में से एक हैं। उनका जन्म बंगाल प्रान्त के फरीदपुर जनपदान्तर्गत कोटालपाड़ा नामक गाँव में हुआ था। वे आजन्म ब्रह्मचारी रहे। बंगाल से वे काशी आए जहाँ शास्त्रार्थ में उन्होंने कई विद्वानों को पराजित किया। इससे विद्या के क्षेत्र में उनकी काफी ख्याति फैल गयी। इनके विद्यागुरु का नाम माधव सरस्वती था। इन्होंने स्वामी विश्वेश्वर सरस्वती से दण्ड ग्रहण किया था। इनका स्थितिकाल 16वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध अथवा 17वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध था। ये अद्भुततार्किक और शास्त्रार्थ पटु थे। स्वामी मधुसूदन सरस्वती एक सिद्ध सन्त एवं योगी थे। उनकी सिद्धि के बारे में अनेक कथाएँ प्रचलित हैं। वे कई कई दिन तक समाधिस्थ रहते थे। उन्होंने कई ग्रन्थों की रचना की। इनके द्वारा रचित ग्रन्थ निम्नलिखित हैं--

सिद्धान्त बिन्दु, संक्षेप शरीर की व्याख्या, अद्वैतसिद्धि, अद्वैतरत्नरक्षण, वेदान्त कल्पलतिका,

गुढ़ार्थ दीपिका, प्रस्थान भेद, महिम्न स्तोत्र की टीका,भक्ति रसायन। इनके सभी ग्रन्थ बड़े ही लोकप्रिय हैं।

धर्मराज अध्वरीन्द्र-- धर्मराज अध्वरीन्द्र का स्थितिकाल सत्रहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना जाता है। ये स्वामी नृसिंहाश्रम के प्रशिष्य थे। नृसिंहाश्रम के शिष्य वेंकटनाथ थे और वेंकटनाथ के शिष्य धर्मराज जी थे। धर्मराज अध्वरीन्द्र के ग्रन्थों में वेदान्त परिभाषा प्रधान है। यह अद्वैतसिद्धान्त का अत्यन्त उपयोगी प्रकरण ग्रन्थ है। इसके ऊपर बहुत सी टीकाएँ हुई हैं और भिन्न भिन्न स्थानों से इसके अनेकों संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। इस ग्रन्थ के अतिरिक्त धर्मराज अध्वरीन्द्र ने गंगेशोपाध्याय कृत 'तत्वचिन्तामणि' नामक नव्यन्याय के ग्रन्थ पर ' तर्क चूड़ामणि' नामकी एक टीका भी लिखी है। यह टीका बहुत ही युक्तियुक्त है।

रामतीर्थ-- स्वामी रामतीर्थ का स्थितिकाल सत्रहवीं शताब्दी माना जाता है। वे स्वामी कृष्णतीर्थ के शिष्य थे। उन्होंने वेदान्त सार पर एक टीका लिखी है और इसके अतिरिक्त इन्होंने संक्षेप शरीरिक के ऊपर 'अन्वयार्थ प्रकाशिका', भगवान् शंकराचार्यकृत उपदेशसाहस्री पर 'पदयोजनिका' और वेदान्त सार पर 'विद्वन्मनोरंजिनी' नामक टीकाएँ लिखी हैं। उन्होंने मैत्रायणी उपनिषद् पर भी एक टीका लिखी है। जो अभी तक अप्रकाशित है।

आपदेव-- आपदेव सुप्रसिद्ध मीमांसक थे। उनके द्वारा लिखित 'मीमांसान्याय प्रकाश' नामक ग्रन्थ पूर्वमीमांसा का एक प्रामाणिक प्रकरण ग्रन्थ है। मीमांसक होते हुए भी उन्होंने श्री सदानन्द कृत वेदान्तसार पर 'बालबोधिनी' नाम की टीका लिखी है, जो नृसिंह सरस्वतीकृत 'सुबोधिनी' और रामतीर्थ कृत 'विद्वन्मनोरंजिनी' की अपेक्षा भी अधिक उत्कृष्ट समझी जाती है। यद्यपि वे मीमांसक थे, तथापि उनका मत अद्वैतवाद ही रहा।

गोविन्दानन्द-- श्री गोविन्दानन्द का स्थितिकाल भी सत्रहवीं शताब्दी ही है। उन्होंने शारीरिक भाष्य 'रत्न प्रभा' नामक टीका लिखी। यह सभी उपलब्ध टीकाओं से सरल है। श्री गोविन्दानन्द और ब्रह्मानन्द जी दोनों के ही विद्यागुरु श्री शिवरामजी थे।

रामानन्द सरस्वती- परमरामभक्त स्वामी रामानन्द सरस्वती, स्वामी गोविन्दानन्द के शिष्य थे और इनका स्थितिकाल भी सत्रहवीं शताब्दी ही है। इन्होंने 'ब्रह्मामृत विर्षिणी' नामक टीका लिखी है, जो सिद्धान्ततः शांकर भाष्य का अनुसरण करती है और ब्रह्मसूत्र का शांकर भाष्यानुसारी तात्पर्य जानने के लिए शुरू में इसका अध्ययन बहुत ही उपयोगी है। इनका दूसरा ग्रन्थ- 'विवरणोपन्यास' है।

काश्मीरक सदानन्द यति-- जैसा कि नाम के पूर्व ही काश्मीरक शब्द से ही पता चलता है कि ये कश्मीर प्रदेश के निवासी थे और यति अर्थात्, सन्यासी थे। इन्होंने 'अद्वैत ब्रह्मसिद्धि' नामक प्रकरण ग्रन्थ लिखा है जो अद्वैतमत का एक प्रामाणिक ग्रन्थ है। इनका भी स्थिति काल

सत्रहवीं शताब्दी ही है।

रंगनाथ-- श्री रंगनाथ जी ब्रह्मसूत्रों की शांकर भाष्यानुसारिणी वृत्ति के रचयिता हैं। इनका स्थितिकाल सत्रहवीं शताब्दी है। आचार्य रंगनाथ की वृत्ति बहुत सरल है। इन्होंने ब्रह्मसूत्र प्रथम अध्याय - द्वितीय पाद के अन्तर्गत तेईसवें सूत्र के पश्चात् 'प्रकरणत्वात्' यह एक नवीन सूत्र माना है। भामती कारादि ने इसे भाष्य के अन्तर्गत स्वीकार किया है; किन्तु वैयासिक न्याय मालाकार भारतीतीर्थ ने इसे पृथक् सूत्र नहीं माना है। रंगनाथ जी ने भी उन्हीं के मत का अनुसरण किया है। इनके मत में कोई नवीनता नहीं है। इन्हें आचार्य शंकर का ही सिद्धान्त अभिमत है।

ब्रह्मानन्द सरस्वती-- स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती अद्वैतवाद के ख्यातिलब्ध विद्वान् थे। इनका स्थिति काल सत्रहवीं शताब्दी है। श्री नारायणतीर्थ से इन्होंने अध्ययन किया था तथा स्वामी परमानन्द सरस्वती इनके दीक्षा गुरु थे। इन्होंने इन्होंने अद्वैत सिद्धि पर 'लघु-चन्द्रिका' नामक टीका लिखी थी और इसके अतिरिक्त इन्होंने मधुसूदन स्वामी के सिद्धान्त बिन्दु पर 'रत्नावली' ओर 'सूत्र मुक्तावली' नामक दो निबन्ध भी लिखे थे।

अच्युतकृष्णानन्द तीर्थ- स्वामी अच्युत कृष्णानन्द तीर्थ कावेरी तीरवर्ती नीलकण्ठेश्वरम् नामक स्थान पर रहते थे। स्वामी स्वयं प्रकाशानन्द सरस्वती इनके विद्यागुरु थे। इन्होंने अप्पय दीक्षितकृत 'सिद्धान्त लेश' पर टीका लिखी है। ये भगवान् श्री कृष्ण के अनन्य भक्त थे, इसलिए इन्हांने अपनी टीका का नाम 'कृष्णालंकार' रखा है। इसके अतिरिक्त इन्होंने तैत्तिरीयोपनिषद् शंकर भाष्य के ऊपर 'वनमाला' नामक टीका भी लिखी है।

महादेव सरस्वती-- महादेव सरस्वती, स्वामी स्वयं प्रकाशानन्द सरस्वती के शिष्य थे। उन्होंने 'तत्वानुसन्धान' नामक एक प्रकरण ग्रन्थ लिखा था और इसी के ऊपर 'अद्वैत चिन्ता कौस्तुभ' नामक टीका भी लिखी। इनका स्थितिकाल अठारहवीं शताब्दी है।

श्री सदाशिवेन्द्र सरस्वती-- श्री सदाशिवेन्द्र सरस्वती का जन्म दक्षिण भारत में करूर नामक स्थान में 18वीं शताब्दी के प्रारम्भ में हुआ था। उनका एक अन्य नाम सदाशिवेन्द्र ब्राह्मण था। बचपन से ही वे बड़े कुशाग्र बुद्धि के थे। उनका अध्ययन तांजोर जिले के जिले के तिरुविसानाल्लूर नामक स्थान में हुआ था। वे बड़े तार्किक थे। कभी कभी किसी विषय पर उनका अपने अध्यापकों से ही शास्त्रार्थ हो जाया करता था। वे सर्वतन्त्र स्वतन्त्र महात्मा थे। उन्होंने महात्मा श्री परमशिवेन्द्र सरस्वती से यौगिक दीक्षा प्राप्त की थी। गुरु की आज्ञा से आगे चलकर वे मौन रहने लगे थे। वे घुम्मक्कड़ स्वभाव के थे। एक स्थान पर अधिक दिन नहीं ठहरते थे। कहा जाता है कि उन्होंने योरोपीय टर्की तक का भ्रमण किया था। नरूर के समीप उनकी समाधि आज भी बनी हुई है।

स्वामी श्री सदाशिवेन्द्र ने कई ग्रन्थ लिखे। उनमें बहुत से तो अप्राप्य हैं, तथा कई तो अप्रकाशित भी। उनके ग्रन्थों में ब्रह्मसूत्रवृत्ति प्रधान है। यह ब्रह्मसूत्रों की शांकर भाष्यानुसारिणी

वृत्ति है। इस वृत्ति का नाम 'ब्रह्मतत्व प्रकाशिका' है। द्वादश उपनिषदों पर भी उनकी टीका है। योगसूत्र पर उनकी 'योगसुधाकर' नामक वृत्ति है। उनके अन्य ग्रन्थ हैं- आत्म विलास, कविताकल्पवल्ली, ओर अद्वैतरस मंजरी।

आयन्न दीक्षित-- आयन्न दीक्षत श्री वेंकटेश के शिष्य थे ओर प्रकाण्ड विद्वान् थे। इनका स्थितिकाल अठारहवीं शताब्दी ही सिद्ध होता है। आयन्न दीक्षित का 'व्यासतात्पर्य निर्णय' नामक एक ही ग्रन्थ पाया जाता है। अद्वैत सिद्धान्त समझने में यह ग्रन्थ सहायक सिद्ध होता है। मौलिक युक्तियों द्वारा श्री आयन्न दीक्षित ने अद्वैत मत को सिद्ध किया है।

स्वामी श्री भारती कृष्ण तीर्थ-- स्वामी श्री भारतीकृष्णतीर्थ उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध एवं बीसवीं शदी के पूर्वार्द्ध में थे। वे अद्वैत वेदान्त एवं संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् तो थे ही, विश्वविख्यात गणितज्ञ भी थे। वे पूर्वाम्नाय पुरी पीठ के जगद्गुरु शंकराचार्य पद पर अभिषिक्त थे। उन्होंने अनेकों लेख लिखे तथा भाषण एवं प्रवचन द्वारासनातन धर्म का प्रचार प्रसार किया। अपने गणितीय ज्ञान को लोगों तक पहुँचाने और भातीय पद्धति से लोगो को अवगत कराने हेतु उन्होंने विदेश (अमरीका) की यात्रा की। शास्त्रों में विदेश यात्रा निषिद्ध होने के कारण विदेश जाते समय उन्होंने जगद्गुरु शंकराचार्य का पद छोड़ दिया था। बाद में इस पद पर स्वामी करपात्री जी महाराज के पूर्व सचिव चन्द्रशेखर शास्त्री जो दीक्षोपरान्त स्वामी निरंजन देव तीर्थ जी महाराज के नाम से विख्यात हुए, अभिषिक्त हुए थे।

स्वामी भारतीकृष्ण तीर्थ जी महाराज उद्भट् विद्वान् थे और अद्वैतवादी थे। इन्होंने आद्य शंकराचार्य द्वारा प्रतिष्ठापित परम्परा को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

अद्वैत दर्शन के अन्य अनेक प्रकाण्ड विद्वान, योगी सिद्ध सन्त यति हुए हैं जिनके ज्ञान एंव प्रभामयी रश्मियों से उस समय के लोग प्रभावित एवं लाभन्वित हुए थे– उनमें प्रमुख है। **श्री देवतीर्थ** स्वामी (काष्ठजिह्वा स्वामी) स्वमी महादेवाश्रम (श्री रामनिरंजन स्वामी), स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती, और स्वामी भास्करानन्द सरस्वती,।

स्वामी करपात्री जी महाराज--[1] संसार में ऐसे व्यक्तित्व से विभूषित महापुरुष अंगुलिगणनीय हैं जिनकी महत्ता उदारता, प्रभाव ओर स्वभाव की विनम्रता से उस समय सम्पूर्णवातावरण प्रभावित होने से नहीं बच सकता। बीसवीं शदी में इस प्रकार के व्यक्तित्व से सम्पन्न पूज्य स्वामी करपात्री जी महाराज थे, जिनके हृदय एवं मस्तिष्क से प्रवाहित वांकविज्ञान ने समग्र संसार की चिन्तन धारा के मूल को प्रभावित किया है। यही कारण है कि श्रद्धालुजन उन्हें मूर्तिमान् सनातन धर्म मानते थे। वे धर्म सम्राट् की पदवी से मण्डित थे। पूज्य महाराज श्री में धर्म और राजनीति का अलौकिक सामंजस्य

---

1. विशेष अध्ययन हेतु स्वामी करपात्री जी और उनका राजनीतिक दर्शन लेखक - डॉ० राम जीमिश्र प्रकाशक- आचार्य प्रकाशन इलाहाबाद का अध्ययन करना चाहिए।

प्रादुर्भूत था। वे प्राणिमात्र एंव विश्व के कल्याण की कामना करते थे, और यही उनका उद्घोष भी था।

बीसवीं शताब्दी में जिन महापुरूषों ने विशुद्ध भारतीय संस्कृति के आधार पर राष्ट्र के नवजागरण का प्रयास किया उनमें स्वामी करपात्री जी सर्वप्रमुख थे। वे उस श्रृंखला की कड़ी थे जो वैदिक कालीन भारत को बीसवीं शताब्दी के भारत से जोड़ती है। वे महनीय विभूति थे जिनके प्रयत्नों के फलस्वरूप वैदिक मन्त्रों के महोच्चार से एक बार आसेतु हिमालय गूँज उठा था। वस्तुतः वे भारतीय संस्कृति के जीवन्त प्रतीक थे। भारतीय संस्कृति के प्रति उनके मन में अपार श्रद्धा और ममता थी और उसके पतन से अपार पीड़ा और क्षोभ।

स्वामी करपात्री जी व्यक्ति नहीं संस्था थे। उनकी वाणी में भगवान् श्री कृष्ण की गीता अर्जुन का गाण्डीव ये दोनों एकाकार थे, और व्यक्ति की स्थिति में सन्यासी रहते हुए भी समाजिक स्थिति के सैद्धान्तिक संघर्षों का दृढ़ता से सामना करते हुए वे राष्ट्रीय जनमंच से पंचदशकों (अर्द्धशती) तक दहाड़ते रहे।

स्वामी करपात्री जी का जन्म उत्तर प्रदेश के प्रतापगढ़ जनपदान्तर्गत भटनी नामक गावं में श्रावण शुक्ल द्वितीया संवत् 1964 वि० सन् 1907 में एक प्रतिष्ठित सरयू पारीण- ब्रहमण परिवार में हुआ था। इनके पिता का नाम पं० राम निधि ओझा था। स्वामी जी तीन भाइयों में सबसे कनिष्ठ थे। इनका नाम हरनारायण ओझा था। अल्पायु में ही इनका विवाह निकट के खण्डवा ग्राम में कर दिया गया था। विवाहोपरान्त इनके एक कन्या उत्पन्न हुई थी। १७ वर्ष की अल्पायु में स्वामी जी ने गृहत्याग कर दिया। गृहत्याग के बाद स्वामी जी की भेंट स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती से हुई जो बाद में ज्योतिष्पीठ के शंकराचार्य भी हुए। स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती के आदेश पर हरनारायण नरवर गए जहाँ उन्होंने षड्दर्शन, व्याकरण का गम्भीर अध्ययन किया। उस समय इनका नाम हरिहर चैतन्य हो गया था। इसके बाद वे हिमालय में पहुँचे जहाँ उन्होंने तपस्या की। तपस्या के बाद इन्होंने स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती से दण्ड ग्रहण किया और हरिहरानन्द सरस्वती नाम से विश्वप्रसिद्ध हुए। हाथ में ही भोजन ग्रहण करने के कारण 'करपात्री' कहलाए और इसी नाम से जगद्विख्यात् हो गए। स्वामी जी का निधन माघ शुक्ल चतुर्दशी दिन रविवार तदनुसार ०७ फरवरी सन् १९८१ ई० को हुआ था।

स्वामी जी ने तत्व निर्णयार्थ अनेकों शास्त्रार्थ किये। उन्होंने यज्ञों की परम्परा को पुनर्जीवित किया। हिन्दू कोडबिल एवं गोहत्या के विरोध में आन्दोलन किया। अखण्ड भारत हेतु अनेकों बार जेल गए। सनातन धर्म के रक्षार्थ अखिल-भारतीय धर्मसंघ की स्थापना की। शिक्षा प्रचार प्रसार हेतु धर्म संघ शिक्षामण्डल, एवं वेदशास्त्रानुसन्धान संस्थान की स्थापना की। सिद्धान्तों के प्रचार प्रसार हेतु सन्मार्ग दैनिक एवं "सिद्धान्त" साप्ताहिक पत्रों का प्रकाशन किया। धर्मयुत राजनीति के संस्थापन एवं रामराज्य की स्थापना हेतु अखिल भारतीय रामराज्य परिषद् की स्थापना की। काशी सुमेरुपीठ का पुनरुद्धार कर शंकर पीठ पर आचार्य की नियुक्ति की। ज्योतिष्पीठ पर विद्वान् यति को

अभिषिक्त किए।

इन सबके अतिरिक्त उन्होंने शताधिक ग्रन्थों का प्रणयन किया। उनके ग्रन्थों को दो कोटि में विभक्त किया जा सकता है। संस्कृत में वेद विषयक ग्रन्थ तथा हिन्दी में लिखे ग्रन्थ।

वेद विषयक ग्रन्थ- वेदार्थ परिजात-वेदों के सम्बन्ध में स्वामी जी की वेद भाष्य भूमिका दो विस्तृत खण्डों में प्रकाशित है, जिसमें संस्कृत के साथ उसका हिन्दी एवं अँग्रेजी अनुवाद भी है। यह ग्रन्थ सहस्रद्वय पृष्ठों में है। सनातनी परम्परा के पोषक तथा प्रचारक होने के कारण स्वामी जी मन्त्र एवं ब्राह्मण दोनों को श्रुति मानते थे। वेद अपौरुषेय हैं। ऋषिगण मन्त्रों के दृष्टा हैं, कर्त्ता नहीं। इसी प्रकार के अन्य सिद्धान्तों की पुष्टि तर्क तथा युक्ति के द्वारा की गयी है और इन सिद्धान्तों का विरोध करने वाले व्यक्तियों के मतों का खण्डन इन्होंने बड़े विस्तार तथा वैशद्य से किया है।

स्वामी जी के वेद विषयक अन्य ग्रन्थ हैं-- वेद स्वरूप विमर्श, वेद प्रामण्य मीमांसा,। संस्कृत के अन्य ग्रन्थ हैं-- श्री विद्यारत्नाकरः, श्री विद्यावरिवस्या, भक्ति रसार्णव, चातुर्वर्ण्य संस्कृति विमर्शः, अहमर्थ और परमार्थ सार आदि।

हिन्दी रचनाएँ- मार्क्सवाद और रामराज्य, विचारपीयूष, रामायण मीमांसा, भक्ति सुधा, भगवतत्व, भागवत सुधा, राहुल जी भ्रान्ति, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और हिन्दू धर्म, पूंजी वाद, समाजवाद और रामराज्य, संघर्ष और शान्ति, विदेशयात्रा शास्त्रीय पक्ष, क्या सम्भोग से समाधि?

रामराज्य परिषद की नीति सम्बन्धी विभिन्न विषयों पर उन्होंने अनेकों पुस्तकें लिखी जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं- रामराज्य परिषद और अन्यदल, आधुनिक राजनीति और रामराज्य परिषद, राजनीति में भी ईमानदारी, धर्म और राजनीति।

स्वामी करपात्री जी का व्यक्तित्व बड़ा ही विशाल था। वे अद्वैत वेदान्त के प्रतिभा सम्पन्न उच्चकोटि के विद्वान् थे। अद्वैत के सहायक तथा पोषक मीमांसा, न्याय तथा सांख्य योग शास्त्रों का भी ज्ञान उनका उतना ही पूर्ण तथा प्रभावशाली था। सनातन धर्म के सिद्धान्तों के मण्डन करने में तथा उसके प्रतिस्पर्धियों के तर्काभास से परिपुष्ट मतों को ध्वस्त करने में उनकी तर्क चातुरी का चमत्कार प्रौढ़ विद्वानों को भी आश्चर्य चकित करने वाला था।

स्वामी जी भारतवर्ष में वैदिक संस्कृत के अभूतपूर्व भाष्यकार के रूप में सामने आते हैं। वेद विद्या का प्रसार जिस भाषा- शैली में होता है उसमें भाष्यकार अनुक्त का ज्ञापक या व्याख्याकार होता है। देश काल परिस्थति में अपेक्षित अंश का वह भाष्य करता है। महान् दार्शनिक एवं 'तर्कचक्रवर्त्ति' शंकराचार्य ने प्रस्थानत्रयी का भाष्य दार्शनिक आवश्यकता के अनुरूप किया। किसी नए दर्शन की स्थापना नहीं की। उनके युग की वही आवश्यकता थी। अद्वैत दर्शन के साथ समाजिक व्यवस्था(वर्णाश्रम) का प्रतिपादन अनिवार्य था। लेकिन स्वामी करपात्री जी का सन्दर्भ इतना व्यापक था कि उन्हें धर्म, दर्शन, समाज, अर्थ,राजनीति, संस्कृति,उपासना, कर्मकाण्ड इन सबके मूल वेदों की

अपैरूषेयता सभी पर विचार एवं कार्य करना पड़ा। विवाह, उत्तराधिकार, परिवार, संसदीय व्यवस्था, द्वान्द्वात्मक भौतिकवाद,, और उस पर स्थिर सारी व्यवस्था तथा विभिन्न राजनीतिक दर्शनों के आदर्श, का स्वामी जी ने एक तरफ तर्क युक्ति न्याय से खण्डन किया और दूसरी तरफ उनके विकल्प में भारतीय व्यवस्था का सांगोपांग स्वरूप प्रस्तुत किया। इतना बड़ा कार्य भारतीय चिन्तन धारा में किसी भी भाष्यकार ने नहीं किया। श्रद्धा से मुक्त होकर विवेकपूर्ण विवेचन करने पर यहाँ स्वामी करपात्री जी शंकराचार्य से भी आगे चले जाते हैं। इतना अवश्य है और सामंजस्य के नाते कहा जा सकता है कि, उन्होंने शंकराचार्य जी का कार्य बीसवीं शताब्दी में पूरा किया। इस कथन में कोई अतिशयोक्ति नहीं।

इन पंक्तियों के लेखक को उनके साथ उनके संसर्ग में रहने तथा उनके द्वारा संस्थापित संस्थाओं में महत्वपूर्ण पदों पर कार्य करने का सौभाग्य प्राप्त था। इतना प्रकाण्ड वैदूष्य, और वाणी की अद्‌भुत चमत्कृत शक्ति मुझे किसी में अन्यत्र देखने को नहीं मिली। वे यौगिक शक्तियों से युक्त थे। शीर्षासन पर सम्पूर्ण दुर्गा सप्तशती का पाठ करते थे।

इन्हें कई सिद्धियाँ प्राप्त थीं। अम्निका की सिद्धि के माध्यम से इन्हें समस्त शास्त्रीय रहस्यों का साक्षात्कार हो जाता था। इनसे कोई विवरण किसी शास्त्र के विषय में जब प्रश्न करता तो अम्बिका चांगुलीषु का स्मरण करते हुए ये अपनी हाथ की अंगुलियों का विशेष रूप से प्रवर्तन करते थे तथा तुरत शास्त्र के रहस्यों को उद्‌घाटित करने में तत्पर हो जाते थे।

स्वामी श्री कृष्ण बोधाश्रम जी- स्वामी श्री कृष्ण बोधाश्रम जी का पूर्वाश्रम का नाम "मदनमोहन" था। उनका जन्म मथुरा जनपदान्तर्गत भाण्डीश्वरनाथ नामक ग्राम में एक प्रतिष्ठित सनाढ्य ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इनके पिता का नाम पं. टीकाराम था। इन्होंने सेंटजांस कालेज आगरा से उच्च शिक्षा प्राप्त की थी। इन्हें संस्कृत का भी प्रगाढ़ ज्ञान था। बाल्यावस्था से ही वे दयालु, परोपकारी एवं विरक्त स्वभाव के थे। प्रबल वैराग्य होने पर बीस वर्ष की अवस्था में जुलाई 1913 ई० के श्रावणमास में उन्होंने गृहत्याग कर दिया। गंगा, यमुना तथा सरयू आदि पवित्र नदियों के तट पर विचरण करते हुए वे अयोध्या पहुँचे। सन् 1916 में मात्र 24 वर्ष की ही अवस्था में उन्होंने स्वामी चैतन्याश्रम महाराज से दण्ड ग्रहण किया और मदन मोहन से कृष्णबोधाश्रम नाम से जगतप्रसिद्ध हुए।

स्वमी कृष्ण बोधाश्रम धर्म सम्राट् स्वामी करपात्री जी के अनन्य सहयोगी थे। वे प्रकाण्ड विद्वान् एवं यौगिक क्रियाओं के ज्ञाता थे। ज्योतिष्पीठ के शंकराचार्य स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती जी महाराज के ब्रह्मलीन होने के उपरान्त धर्म सम्राट् स्वामी करपात्री जी महाराज तथा श्री मद्‌आर्यावर्त्त विद्वत्परिषद तथा काशी विद्वत्परिषद ने उन्हें ज्योतिष्पीठ बदरिकाश्रम हिमालय के शंकराचार्य पद पर अभिषिक्त किया। स्वामी कृष्ण बोधाश्रम जी महाराज के बारे में धर्म सम्राट् स्वामी करपात्री जी महाराज ने एक बार लिखा था "जीवन्मुक्त महात्माओं पर शास्त्र का शासन नहीं होता- 'एतस्य

कृतकृत्यत्वाच्छास्त्रमस्मिन्निवर्त्तते' - प्रथम कोटि साधक यथाविधि श्रौत स्मार्त्त कर्मों का अनुष्ठान करके उपासना द्वारा चित्त दोषों का निराकरण करता है, पुनः श्रवण, मनन, निदिध्यासन के द्वारा ब्रह्मात्म साक्षात्कार सम्पादन करता हैं। वह तब जीवन मुक्त या स्थितप्रज्ञ होता है। इस क्रम से कर्म एवं उपासना में पूर्व मीमांसा, श्रवण में उत्तरमीमांसा, मनन में न्याय-वैशेषिक तथा निदिध्यासन में सांख्य और योगदर्शनका कार्य समाप्त हो जाता है। इस तरह कृतकृत्य जीवन मुक्त का अपना कुछ भी प्रयोजन न रहने से यद्यपि उस पर शास्त्र का नियन्त्रण नहीं होता, शास्त्र उससे निवृत्त हो जाता है, तथापि पूर्वाभ्यास के कारण उससे यथायोग्य कर्म एवं उपासना होते रहते हैं। श्री मधुसूदन सरस्वती जी कहते हैं-' अद्वैष्ट्टत्वादिवत्तेषां स्वभवो भजनं हरेः'। जैसे उनमें स्वभाव से ही अद्वैष्ट्त्वादि गुण रहते हैं, उसी प्रकार भगवान् का भजन करना भी उनका स्वाभाव ही होता है। जगद्‌गुरु जी इसी कोटि के स्थितप्रज्ञ महात्मा थे।''

इस प्रकार स्वामी कृष्ण बोधाश्रम जी महाराज त्याग और सरलता की प्रतिमूर्ति थे। इनका लिखा कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है, किन्तु मेरठ धर्म संघ द्वारा इनके ऊपर 'जगद्‌गुरु गौरव' नामक ग्रन्थ प्रकाशित है। 81 वर्ष की अवस्था में भाद्रशुक्ल त्रयोदशी, तद्नुसार 10 सितम्बर 1973 ई० को उन्होंने इहलीला का संवरण किया।

स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती-- स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती का पूर्वाश्रम का नाम शान्तनुविहारी द्विवेदी (सन्तान बिहारी) था। इनका जन्म वाराणसी मण्डल के महाइच परगना के महराई गाँव में श्रावण अमावस्या संवत् 1966 ईसवी सन् 1911 में हुआ था। इनके पितामह का नाम श्री चन्द्रशेखर द्विवेदी एवं पिता का नाम हर्षेन्दु द्विवेदी था। इन्होंने सन् 1942 में तत्कालीन ज्योतिष्पीठ के शंकराचार्य स्वामी ब्रहमानन्द सरस्वती से दण्ड ग्रहण कर स्वामी अखण्डाननद सरस्वती के नाम से जगत् प्रसिद्ध हुए। श्री मद्‌भागवत, उपनिषद् तथा अनेक शास्त्रों के उद्‌भट विद्वान एव्रं प्रवचन कर्त्ता स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती जी का शास्त्रीय वैदूष्य जितना उच्च कोटि का था, उतनी ही उदात्त कोटि की उनकी आध्यात्मिक साधना एवं दीर्घ तपस्या थी। पहले ये गोरखपुर से प्रकाशित 'कल्याण पत्र' में कार्य करते थे। स्वामी जी श्रीमद्‌भागवत की हिन्दी व्याख्या भक्ति तथा ज्ञान प्रचुरलेखों, दार्शनिक गूढ़ विषयों के विवेचन प्रवचन आदि के द्वारा सनातन धर्म एवं अद्वैत सिद्धान्त का प्रचुर प्रचार का जनता में धार्मिक जागृति को समुज्वलित किए थे। स्वामी जी देश के महान् एवं प्रतिष्ठित सन्तों के सान्निध्य में रहे। उनमें भी उड़िया बाबा एवं स्वामी करपात्री जी महाराज सर्व प्रमुख थे। स्वामी जी ने सम्पूर्ण भारत का तीर्थाटन किया था तथा अनेक ट्रष्टों की स्थापना की थी। उन्होंने 30 से अधिक ग्रन्थों का प्रणयन किया था और यावज्जीवन शंकरमत एंव अद्वैत सिद्धान्त का प्रचार प्रसार करते रहे।

स्वामी महेश्वरानन्द सरस्वती-- स्वामी महेश्वरानन्द सरस्वती का पूर्वाश्रम का नाम पं. महादेव शास्त्री था। वे न्याय, व्याकरण, साहित्य, मीमांसा तथा वेदान्तादि शास्त्रों के प्राचीन पद्धति

के निष्णात विद्वान् थे। उनकी विद्वता से प्रभावित होकर महामना पं. मदन मोहन मालवीय ने उन्हें काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में संस्कृत महाविद्यालय का अधिभार सौंपा। जहाँ उन्होंने छात्रों को संस्कृत का प्रौढ़ ज्ञान कराया। वे आशु कवि थे। संस्कृत महाविद्यालय से अवकाश ग्रहण कर उन्होंने स्वामी करपात्री जी महाराज से दण्ड ग्रहण किया और स्वामी महेश्वरानन्द सरस्वती नाम से प्रसिद्ध हुए। बाद को स्वामी करपात्री जी महाराज ने काशी सुमेरुपीठ का पुनरुद्धार किया तो स्वामी महेश्वरानन्द सरस्वती जी महाराज को ही उस पीठ का शंकराचार्य मनोनीत कर अभिषिक्त किया। वे एक महान् योगी थे। यावज्जीवन उन्होनें अद्वैत दर्शन का प्रचार प्रसार किया। वर्ष १९७५ में उन्होंने इहलोकलीला का संवरण किया।

स्वामी शंकरानन्द सरस्वती-- स्वामी शंकरानन्द सरस्वती का पूर्वाश्रम का नाम शंकरानन्द ब्रह्मचारी था। इनका जन्म रायबरेली जनपद के किसी गाँव में प्रतिष्ठित सरयूपारीण ब्राह्मण परिवार में हुआ था। ये काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी के प्राच्य विधा धर्म विज्ञान संकाय में वेदान्त विभाग के प्राध्यापक एवं अध्यक्ष थे। यह संस्कृत, दर्शन, वेदान्त के प्रकाण्ड विद्वान् थे। नौकरी से त्यागपत्र देकर इन्होंने पूज्य स्वामी करपात्री जी महाराज से दण्ड ग्रहण किया और शंकरानन्द सरस्वती नाम से जगत् प्रसिद्ध हुए। स्वामी महेश्वरानन्द सरस्वती के ब्रहमीभूत होने के बाद स्वामी करपात्री जी महाराज, श्रीमद्आर्यावर्त्त विद्वत्परिषद एवं काशी विद्वत्परिषद ने इन्हें काशी सुमेरु पीठ का जगद्गुरु शंकराचार्य मनोनीत किया तथा इस पद पर अभिषिक्त किया। इन्होंने अद्वैतमत का काफी प्रचार प्रसार किया तथा अपने पुरुषार्थ से अस्सी स्थित डुमराँव कालोनी में सुमेरुमठ (पीठ) की स्थापना की। ये उच्च कोटि के विद्वान् एवं सन्त थें प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक को काफी समय तक इनके संसर्ग में रहने का सौभाग्य प्राप्त था। इन्होंने यावज्जीवन सनातन धर्म का प्रचार प्रसार किया।

स्वामी नन्दनन्दनानन्द सरस्वती (शास्त्री स्वामी)

स्वामी नन्दनन्दनानन्द सरस्वती का पूर्वाश्रम का नाम नन्दलाल शर्मा शास्त्री था। इनका जन्म ब्राहमण परिवार में हुआ था। इन्होंने एम.ए, एल.एल.बी की उपाधि प्राप्त की थी। हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी और उर्दू में इनका प्रकाण्ड पाण्डित्य था। ये स्वामी करपात्री जी महाराज के अनन्य अनुयायी थे। अखिल भारतीय रामराज्य परिषद के राष्ट्रीय अध्यक्ष, केन्द्रीय महामंत्री थे। एक बार लोक सभा के लिए भी रामराज्य परिषद के टिकट पर चुने गए थे और पाँच वर्ष तक सांसद रहे। सन्मार्ग दैनिक के प्रधान सम्पादक थे। स्वामी करपात्री जी महाराज से इन्होंने दण्ड ग्रहण किया था और तभी से स्वामी नन्दनन्दनानन्द सरस्वती के नाम से प्रख्यात हुए थे। श्रद्धालु जन इन्हें स्नेह व श्रद्धा से शास्त्री स्वामी कहते थे। इनमें प्रकाण्ड वैदूष्य था। स्वामी जी के सिद्धान्तों का वे आजीवन प्रचार प्रसार करते रहे। शास्त्री स्वामी शास्त्रज्ञ एव भजनानन्दी थे। सारा समय पूजा पाठ एवं अध्ययन में व्यतीत करते थे। लेखनी के बड़े धनी थे। काशी में ही ये ब्रह्मलीन हुए। अद्वैत सिद्धान्त का प्रचार प्रसार इन्होंने

यावज्जीवन किया।

स्वामी निरंजन देवतीर्थ जी-- स्वामी निरंजन देवतीर्थ के पूर्वाश्रम का नाम चन्द्रशेखर शास्त्री था। इनका जन्म प्रतिष्ठित गौड़ ब्राह्मण परिवार में हुआ था। ये जयपुर के संस्कृत कालेज में प्राध्यापक थे। स्वामी करपात्री जी महाराज के ये मन्त्री भी रहे। अखिल भारतीय धर्म संघ के अध्यक्ष थे। स्वामी करपात्री जी महाराज के अनन्य सहयोगी थे। द्वारिका पीठ के तत्कालीन शंकराचार्य स्वामी अभिनव सच्चिदानन्द तीर्थ से दण्ड ग्रहण कर वे निरंजन देव तीर्थ नाम से जगत् प्रसिद्ध हुए। ये पुरी पीठ के जगद्गुरु शंकराचार्य पद पर अभिषिक्त हुए और पुरी पीठाधीश्वर रहे। सनातन धर्म के प्रचार प्रसार में यावज्जीवन लगे रहे। शास्त्र मर्यादा के रक्षणार्थ वे बड़ा से बड़ा त्याग करने को सदैव तत्पर रहते थे। गीता, गौ, गायत्री में उनकी आस्था थी। गोहत्या विरोधी आन्दोलन में उन्होंने 72 दिनों तक अनशन किया था। जब तक वे पुरी पीठ के शंकराचार्य रहे पीठ की बड़ी प्रतिष्ठा रही और ये हमेशा चर्चा में रहे। स्वामी करपात्री जी महाराज की सभी संस्थाओं से सम्बद्ध रहे। देश में उनका बड़ा मान सम्मान था। इन्होंने प्रण किया था कि जब तक देश से गोहत्या का कलंक नहीं मिट जाता तब तक मैं छत्र, चँवर और सिंहासन धारण नहीं करूँगा और यावज्जीवन उन्होनें इस प्रण का पालन किया। स्वामी निरंजन देव तीर्थ का तिरोधन काशी में हुआ। इन्होंने आद्य शंकराचार्य की परम्परा को प्रतिष्ठित एवं पुष्ट किया।

श्री वासुदेव शास्त्री ''अतुल''

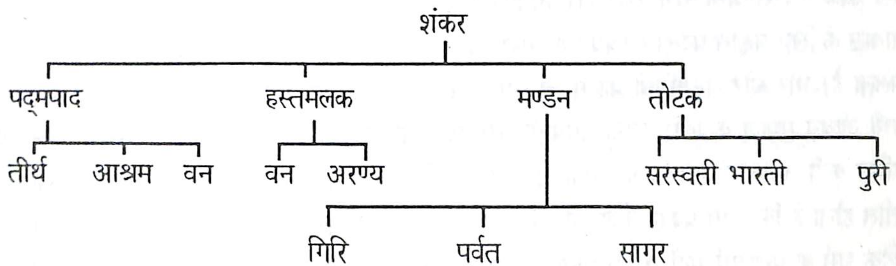
श्री वासुदेव शास्त्री''अतुल'' का जन्म प्रतापगढ़ जनपदान्तर्गत कुण्डा तहसील के ''लुरू'' नामक गाँव में एक प्रतिष्ठित सरयूपारीण ब्राह्मण परिवार में हुआ था। ये हिन्दी एवं संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे तथा अद्वैत मत के प्रचार प्रसार में लगे रहते थे। इन्होंने स्वामी करपात्री जी महाराज से दीक्षा प्राप्त की थी। ये स्वामी करपात्री जी के साथ निस्पृह रूप से लगे रहे और यात्रा में उनकी सेवा में रहते थे। स्वामी करपात्री जी महाराज द्वारा संस्थापित अखिल भारतीय रामराज्य परिषद के ये केन्द्रीय महामंत्री रहे। इस रूप में इन्होंने परिषद् को जन जन तक पहुँचाने का अथक प्रयास किया। धार्मिक आन्दोलनों में इन्हें कई बार जेल भी जाना पड़ा। अन्तिम समय में इन्होंने वेदान्ती स्वामी से दण्ड ग्रहण किया था और उसके कुछ समय पश्चात् ही इनका तिरोधान हो गया था।

स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती- स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती का पूर्वाश्रम का नाम पोथी राम था। इनका जन्म मध्यप्रदेश के सिवनी जनपदान्तर्गत दिघोरी गाँव में भाद्रपद मास के शुक्ल पक्ष की तृतीया संवत् 1980 तद्नुसार 2 सितम्बर सन् 1924 को एक प्रतिष्ठित ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इनके पिता का नाम श्री धनपति उपाध्याय और माता का नाम गिरिजा देवी था। मात्र 9 वर्ष की अल्पवय में ही उन्होंने गृह त्याग दिया था और अनेक स्थलों एवं तीर्थो का भ्रमण करते हुए ये काशी पहुँचे। काशी में इन्होंने धर्म सम्राट् पूज्य स्वामी करपात्री जी महाराज एवं काशी सुमेरुपीठ के

शंकराचार्य स्वामी महेश्वरानन्द सरस्वती जी से वेदवेदांग, शास्त्र- पुराणेतिहास सहित स्मृति-एवं न्याय ग्रन्थों का विधिवत अध्ययन किया। सन् 1942 के 'अंग्रेजो भारत छोड़ो' आन्दोलन में भाग लिए और मात्र 19 वर्ष की आयु में स्वतन्त्रता संग्राम में जेल गए। वहाँ इन्हें लोग 'क्रान्तिकारी साधु' कहते थे। वाराणसी और मध्य प्रदेश की जेलों में क्रमशः 9 और 6 महीने की सजाएँ भोगनी पड़ी। सन् 1950 में इन्होंने ज्योतिष्पीठ के तत्कालीन शंकराचार्य स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती से दण्ड ग्रहण किया और स्वरूपानन्द सरस्वती नाम से जगत् प्रसिद्ध हुए। स्वामी करपात्री जी महाराज के ये अनन्य सहयोगी रहे। ये अखिल भारतीय रामराज्य परिषद् के राष्ट्रीय अध्यक्ष भी रहे। सन् 1973 में स्वामी कृष्ण बोधाश्रम जी महाराज के ब्रहमीभूत होने पर इन्हें पूज्य स्वामी करपात्री जी महराज एवं श्रीमद् आर्यावार्त विद्वत्परिषद् एवं काशी विद्वत्परिषद् तथा मुख्य रूप से भारत धर्म महामण्डल के सहयोग से ज्योतिष्पीठ का शंकराचार्य मनोनीत एवं इस पद पर अभिषिक्त किया गया। द्वारका शारदा पीठ के जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी अभिनव सच्चिदानन्द तीर्थ के ब्रहमीभूत होने पर उनके इच्छापत्र के अनुसार इन्हें 27 मई 1982 को द्वारका शारदा पीठ के शंकराचार्य पद पर अभिषिक्त किया गया। तब से ये ज्योतिष्पीठ एवं द्वारका शारदा पीठ दोनों के ही पीठाधीश्वर हैं। स्वामी जी ने सनातन धर्म के प्रचार प्रसार हेतु आध्यात्मिक उत्थान मण्डल नामक एक संस्था भी स्थापित की। श्री विद्या के उपासक स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती सनातन धर्म के प्रचार प्रसार में लगे रहते हैं। कई शिक्षण सस्थाएँ एवं औषधालयों की स्थापना कर जन सेवा का भी कार्य कर रहे हैं। गिरिजनों, पुरजनों गरीबों की सेवा करते हुए उन्हें धर्म परिवर्तन के कुचक्र से बचाते हैं। रामजन्म भूमि में मन्दिर निर्माण आन्दोलन में उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा एक बार गिरफ्तार भी हो चुके हैं। सम्पूर्ण देश में अद्वैतमत एवं सनातन धर्म के प्रचार प्रसार में संलग्न हैं। ये स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी के रूप में कारागार में यातनाएँ भी भुगत चुके हैं।

आचार्य शंकर द्वारा प्रवर्तित पंथ या सम्प्रदाय

आद्य शंकराचार्य द्वारा सन्यासियों के लिए जो सम्प्रदाय या पंथ प्रवर्तित किए गए इन्हे 'दशनाम' नाम से अभिहित किया गया। इस दशनामी सम्प्रदाय की शिष्य परम्परा इस प्रकार है-



आगे के अध्यायों में मठों के संगठन आदि का वर्णन किया जाएगा। 

मठाम्नायोपनिषत् शंकर पीठ और उनका महत्त्व तथा पीठाधीश्वर, अब तक के सभी शंकराचार्य।

पीठ, मठ और उसकी परिभाषा- पीठ के सम्बन्ध में पुराणों में वर्णन आता है कि एक बार दक्ष प्रजापति ने यज्ञ का आयोजन किया, इस यज्ञ में उन्होंने समस्त देवी देवताओं को आमन्त्रित किया, किन्तु अपनी पुत्री सती और जमाता भगवान् शंकर जी को आमंत्रित नहीं किया। अपने पिता के यहाँ यज्ञ आयोजन का समाचार पाकर बिना आमन्त्रण के ही सती पिता के घर चली गयीं, किन्तु वहाँ यज्ञ भाग में भगवान् शिव का अंश न देखकर दुखी हुई। कारण पूछने पर दक्ष प्रजापति ने भूतभावन आशुतोष भगवान शिव के लिए अपशब्दों का प्रयोग किया। इस अपमान को सती सहन न कर सकीं, और उन्होंने यज्ञ कुण्ड में कूद कर प्राणोत्सर्ग कर दिया। जब यह समाचार भगवान् शंकर को मिला तो वे अपने परिकरों के साथ पहुँचकर दक्ष के यज्ञ का विध्वंस कर दिया, और सती के शव को कन्धे पर रखकर तांडव करने लगे। भागवान् शिव की इस स्थिति से देवताओं को बड़ा क्षोभ हुआ और भगवान् विष्णु ने सती के शव में प्रवेशकर अपने चक्र से सती के शरीर के टुकड़े -टुकड़े कर डाला। शिव, शव का लेकर घूम रहे थे इसलिए शवांर्श भिन्न-भिन्न स्थानों पर गिरे और जहाँ-जहाँ वे गिरे प्रत्येक स्थान पर उनसे एक भैरव और एक शक्ति का प्रादुर्भाव होता गया। ये स्थान आगे चलकर पीठ कहलाए तथा एक विशेष पवित्रता की दृष्टि से देखे जाने लगे। इन्हें शक्तिपीठ कहा जाता है, इनकी संख्या कही कहीं 52 तों कहीं-कहीं 108 बतायी जाती है। इस प्रकार यह बात सिद्ध होती है कि किसी पीठ की स्थापना सुदीर्घ और सुपुष्ट परम्परा के अनुसार ही की जाती है पीठों के संरक्षक, अधिष्ठाता को पीठाधीश्वर कहते हैं। भगवान् आद्य शंकराचार्य ने धर्म के प्रचार प्रसार हेतु पीठों की स्थापना की और इसके साथ मठ निर्मित किए।

मठ - मठ शब्द 'मठ मदनिवासयोः' धातु से 'हलश्च' सूत्र से घ प्रत्यय लगाने पर बनता है। जिसका अर्थ होता है जहाँ पर छात्रादि अध्ययन करते हुए निवास करते हैं।[1] स्पष्ट है कि संज्ञापूर्वकत्वात् वृद्धि नहीं होती अतः 'मठन्ति निवसन्ति छात्राः संन्यासिनश्चात्रेति मठः।' मठ वह जहाँ छात्र एवं सन्यासी गण रहते हों। जाबालिक उपनिषद् एवं वशिष्ठ विधान में सन्यासियों के आवास के लिए प्रकृति प्रदत्त आश्रय-गिरि-गहर, गाँव की सीमा से दूर, देवायतन एवं कुटी का सन्दर्भ मिलता है। धीर धीरे सन्यासियों का महत्व समाज में बढ़ने लगा, परिणाम स्वरूप उनका गिरि गहर वासी जीवन समाज के लिए उतना उपयोगी नहीं रहा, और उनका आवास विशेष रूप से ग्रामान्त निर्मित कुटी अथवा देवायतन बन गया। इसी स्थायी निवास के क्रम में मठ की उत्पत्ति हुई। ऐसा प्रतीत होता हे कि जिस प्रकार बौद्ध और जैन संघों द्वारा धर्म प्रचार का कार्य होता था, उसी प्रकार वैदिक धर्म के प्रचारार्थ मठों की स्थापना हुई। ये मठ भारतीय समाज के मूल्यों के रक्षक के रूप में

1. मठश्छात्रादि निलयः ।। अमर कोश 2-2-8 ।।

स्वीकार किए जा सकते हैं।

मठों की स्थापना में आदि शंकराचार्य का विशेष योगदान है, जिन्होंने वैदिक धर्म की पुनर्स्थापना के लिए बौद्ध और जैन मतों का खण्डन करते हुए अद्वैतवादी दर्शन का प्रचार प्रसार किया एंव भारत के चारों कोनों में तथा केन्द्र काशी में मठों की स्थापना कर सम्पूर्ण भारत को एकता के सूत्र में आबद्ध किया। आजकल सामान्यतः मठ का अर्थ एक ऐसे स्थल के रूप में लिया जाता है, जहाँ किसी एक सम्प्रदाय विशेष के साधु सन्त महात्मा या सन्यासी निवास करते हैं और मठाधिपति के अनुशासन में रहकर सम्प्रदाय विशेष के विचारों का प्रचार प्रसार करते हैं। मठों का एक विशेष प्रकार'अखाड़ा' के नाम से जाना जाता है। अखाड़े के नागा सन्यासी योद्धा सन्यासी के नाम से जाने जाते हैं। धर्म रक्षार्थ इन नागा सन्यासियों को आद्य शंकराचार्य ने संगठित किया था।

माधवाचार्य ने शंकर विजय में लिखा है कि शंकराचार्य ने कश्मीर में सर्वज्ञ पीठ पर आरूढ़ होकर वहाँ से अपने शिष्यों को विभिन्न मठों में मठकार्य निरीक्षण के लिए भेज दिया था। इसी क्रम में यह भी वर्णन मिलता है कि शंकराचार्य कैलास से पाँच स्फटिक लिंग लाए थे। उनमें से चार लिंगों की स्थापना उन्होंने क्रमशः बदरीनारायण, नीलकण्ठ क्षेत्र (नेपाल) श्रृंगेरी और चिदम्बरम् में की थी। सर्वश्रेष्ठ पंचम लिंग अपने पास ही रखे थे। वह'योग लिंग' नाम से प्रसिद्ध था। कांची में आचार्य शंकर हमेशा उसी की पूजा किया करते थे। देहत्याग के समय शंकर ने उस लिंगा को सुरेश्वर के हाथ में समर्पित कर कांची पीठ और वहाँ के शारदामठ का भार भी उन्ही को दिया था।[1] शिव रहस्य में भी लिख है कि योग लिंग की स्थापना कांची में ही हुई थी। आचार्य शंकर कांची में ही रहते थे। कहीं कहीं तो उनके तिरोधान को भी कैलाश (केदारनाथ) के बजाय कांची को ही मानते हैं।[2] किन्तु कांची पीठ का उल्लेख मठाम्नायोपनिषत् एवं मठाम्नाय सेतु आदि में कहीं नहीं मिलता।

आम्नाय- आम्नाय पद का अर्थ कुल आगम और उपदेश है।[3] अमर कोष के अनुसार आम्नाय का अर्थ 'सम्प्रदाय' होता है। भानु जी दीक्षित (रामाश्रम) ने अपनी टीका में आम्नाय का अर्थ ''गुरूपरम्परागत सदुपदेश' दिया है। अतः यहाँ इस परिप्रेक्ष्य में श्री आम्नाय का अर्थ 'उपदेश' ही होगा। वैशेषिक दर्शन के अन्त में कहा है-''तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम्'' मीमांसा दर्शन में तो आम्नाय को 'आम्नायस्य क्रियार्शत्वात'' कहकर क्रिया (Process) का बोध कराने वाला माना है। इस प्रकार मठाम्नाय का अर्थ मठों से सम्बन्धित उपदेश, सिद्धान्त अथवा विवरण ही होगा।

---

1. यह शारदा मठ श्रृंगेरी के शारदापीठ से भिन्न है।
2. भारतीय संस्कृति और साधना- म०म०पं. गोपी नाथ कविराज, पृष्ठ 119
3. आम्नायः कुल आगम, उपदेशे च।। 3/5।।

मठाम्नायोपनिषत्- मठाम्नायोपनिषद् में आचार्य शंकर द्वारा स्थापितमठों का विवरण है। जो निम्न लिखित है।

"मठाम्नायोपनिषत्" ऊर्ध्वाम्नाय काशी सुमेरु पीठ के तत्कालीन जगद्गुरुशंकराचार्य स्वामी शंकरानन्द सरस्वती जी महराज ने वर्ष 1982 में लेखक को प्रदान किया था। लेखक इस हेतु सुमेरुपीठ का आभारी है।

ऊँ ऊर्ध्वाम्नाय-गुरूपदेश भुवनाकार सिंहासन सिद्धाचारवन्दित समस्त वेद वेदान्त सार निर्माणं परात्परं निरंजन- ज्ञानार्थ-षट्चक्र- जाग्रतीमयं परावाचा परात्परं सर्वसाक्षिधृतं चिन्मयं ज्योतिर्लिंगं निराकारं गलितं पूर्ण प्रमाशोभितं शान्तं चन्द्रोदयनिभं भजमनस्तच्छीगुरु चैतन्यं प्रणमामि।

ऊर्ध्वम्नायस्थ गुरू के उपदेश से भुवन के आकार वाले सिंहासन पर सिद्ध आचारवालों से वन्दित,समस्त वेद और वेदान्त सार के निर्माता,परात्पर निरंजन उसके ज्ञान के लिए षट्चक्र को जाग्रत करने वाले परावाक् से परे, उससे भी परे जो समस्त साक्षियों से धृत है, चिन्मय है, ज्योतिर्लिंग है, निराकार है, द्रवित है, पूर्ण प्रभा से शोभित है, चन्द्रोदय के सामन शान्त है, उन चैतन्य रूपी गुरु को प्रणाम करता हूँ। हे मन तू उसे प्राप्त कर ले।

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः।।

जो पद अखण्डमण्डल के आकार में है, जो चर तथा अचर (स्थावर और जंगम) में व्याप्त है, उस पद (स्थान) को जिसने दिखाया है, उन श्री गुरु जी महाराज को मेरा प्रणाम है।

ऊँ प्रथमे पश्चिममाम्नायः शारदामठः कीटवारि सम्प्रदायः तीर्थाश्रम पदं द्वारिका क्षेत्रं सिद्धेश्वरो देवः भद्रकाली देवी ब्रह्मस्वरूपाचार्यः गंगा गोमती तीर्थ-स्वरूप ब्रहमचारी सामवेद प्रपठनं 'तत्वमसि' इत्यादिवाक्य विचारः नित्यानित्य विवेक नात्मनोपास्तिं अत्मतीर्थे आत्मोद्धारार्थे साक्षात्कारार्थे संन्यास ग्रहणं करिष्ये। ऊँ नमोनारायणायेति।

प्रथम पश्चिमाम्नाय शारदामठ, सम्प्रदाय कीटवारि, तीर्थ और आश्रम, पद, द्वारिकाक्षेत्र,देवता सिद्धेश्वर, देवी भद्रकाली, आचार्य ब्रह्मस्वरूप, तीर्थ गंगा गोमती, ब्रहमचारी के नाम के आगे स्वरूप सामवेदाध्ययन,'तत्वमसि' महावाक्य विचार नित्यानित्य विवेक द्वारा आत्मा की उपासना करना,आत्मतीर्थ में आत्मा विचार नित्यानित्य विवेक द्वारा आत्मा की उपासना करना, आत्मतीर्थ में आत्मा के उद्धार के लिए तथा आत्मा के साक्षात्कार के लिए, संन्यास ग्रहण करूँगा, यह संकल्पवाक्य है।

ऊँ द्वितीये पूर्वाम्नायः गोवर्द्धनमठः भोगवारिसम्प्रदायः वनारण्ये पुरुषोत्तम। क्षेत्रं जगन्नाथः विमलादेवी भद्र पद्मपादाचार्यः महादधितीर्थं प्रकाश ब्रहमचारी ऋग्वेद प्रपठनम् तमेवैक्यं जानथ'प्रज्ञनमानन्दं ब्रहम' इत्यादि वाक्य विचारः नित्याऽनित्यविवेकेनात्मनोपास्तिं आत्मतीर्थे आत्मोद्धारार्थे साक्षात्कारार्थे संन्यास ग्रहणं करिष्ये। ऊँनमोनारायणायेति।

द्वितीय पूर्वाम्नाय गोवर्धन मठ, भोगवारि सम्प्रदाय तााि अरण्य पद, पुरूषोत्तम् क्षेत्र जगन्नाथ देवता, विमला देवी, आचार्य भद्र पद्मपाद, तीर्थ महोदधि (यह दक्षिण समुद्र की संज्ञा है) ब्रह्मचारी के नाम के आगे प्रकाश, ऋग्वेदाध्ययन आत्मैक्य ज्ञान के लिए प्रज्ञान आनन्द ब्रह्म इत्यादि महावाक्यों का विचार, नित्य और अनित्य के विवेक द्वारा आत्मा की उपासना करना, आत्मतीर्थ में आत्मा के उद्धार के लिए संन्यास ग्रहण करूँगा। यह संकल्प लें। ऊँ नमो नारायणाय' यह समाप्ति सूचक वाक्य है।

ऊँ तृतीये उत्तराम्नायः ज्योतिर्मठः आनन्दवारि सम्प्रदायः गिरिपर्वत सागरपदानि बदरिकाश्रम क्षेत्रं नारायणो देवता पूर्णा गिरि देवी त्रोटकाचार्यः अलकनन्दातीर्थे आनन्दः ब्रहमचारी अथर्वणवेद पठनं तमेवैक्यं जानथ 'अयमात्मा ब्रह्म' इत्यादि वाक्यविचारः नित्यनित्य विवेकेनात्मनोपास्तिं आत्मतीर्थे आत्मोद्धारार्थे संन्यास ग्रहणं करिष्ये। ऊँ नमोनारायणायेति।

तृतीय उत्तराम्नाय ज्योतिर्मठ, आनन्दवारि सम्प्रदाय, गिरि पर्वत और सागर पद बदरिकाश्रम क्षेत्र, नारायण देवता, पूर्णागिरि देवी, आचार्य त्रोटक, तीर्थ अलकनन्दा(हिमालय में गंगा की एक धारा का नाम) ब्रहमचारी के नाम के अन्त में आनन्द, अथर्ववेदाध्ययन उसी एकता के ज्ञानार्थ 'अयमात्मा ब्रहम' इस महावाक्य का विचार नित्य और अनित्य के विवेक द्वारा आत्मा की उपासना करना आत्मा के लिए आत्मा के उद्धार के लिए तथा आत्म साक्षात्कार के लिए संन्यास ग्रहण करूँगा यह संकल्प लें। 'ऊँ नमोनारायणाय' यह समाप्ति सूचक वाक्य है।

ऊँ चतुर्थे दक्षिणाम्नायः श्रृंगेरी मठः भूगिरि सम्प्रदायः सरस्वती, भारती, पुरी चेति पदानि रामश्वरक्षेत्रं आदि वराहो देवता कामाक्षी देवी, श्रृंगी ऋषिः, पृथ्वीधराचार्यः तुंगभद्रा तीर्थं चैतन्य ब्रहमचारी यजुर्वेद पठनं तमेवैक्यं जानथ 'अहं ब्रह्मास्मि' इत्यादि-वाक्य विचारः

चतुर्थ दक्षिणाम्नाय श्रृंगेरी मठ, भूरिवारि सम्प्रदाय, सरस्वती ाारती पुरी ये तीन पद रामेश्वर क्षेत्र,चैतन्य ब्रहमचारी, यजुर्वेदाध्ययन, आत्मा की एकता ज्ञान प्राप्त करना, अहं ब्रहमास्मि' इस महावाक्य का विचार, नित्य और अनित्य वस्तु के विवेक द्वारा आत्मा की उपासना करना, आत्मतीर्थ में आत्मा के उद्धार्थ के लिए तथा आत्मा के साक्षात्कार के लिए संन्यास ग्रहण करूँगा। यह संकल्पवाक्य है।

'ऊँ पंचम ऊर्ध्वाम्नायः सुमेरुमठः काशी सम्प्रदायः जनक-याज्ञवल्क्यादि-शुकवामदेवदि जीवन्मुक्ताः एतत्सनक-सनन्दन-कपिल नारददि ब्रह्मनिष्ठाः नित्य ब्रहमचारी कैलाश क्षेत्रं मानसरोवरं तीर्थं निरंजनो देवता मायादेवी ईश्वराचार्यः अनन्त बहमचारी, शुक द्रववामदेवादि जीवन्मुक्तानां सुसंवेदप्रपठनं परोरजसेऽसावदों 'संज्ञानमनन्तं ब्रहम' इत्यादि वाक्य विचारः नित्यानित्य विवेके नात्मनोपास्तिं आत्मतीर्थे आत्मोद्धारार्थे साक्षात्कारार्थे संन्यास ग्रहणं करिष्ये। ऊँ नमोनारायणायेति।

पंचम ऊर्ध्वाम्नाय सुमेरुमठ काशी सम्प्रदाय जनक याज्ञवाल्क्य, शुकदेव, वामदेव आदि जीवन्मुक्त, सनक, सनन्दन, कपिल, नारद आदि ब्रह्मनिष्ठ नित्य ब्रह्मचारी अर्थात बाल ब्रहमचारी कैलाशक्षेत्र. मानसरोवर तीर्थ. निरंजन देवता मायादेवी, ईश्वर आचार्य, अनन्त ब्रहमचारी, शुकदेव,

वामदेव आदि जीवन्मुक्तों के सुन्दर अनुभवों का अध्ययन 'परोरजसे सावदों संज्ञानमनन्तं-ब्रहम इत्यादि वाक्य विचार नित्य और अनित्य वस्तु के विवेक द्वारा आत्मा की उपासना करना, आत्मतीर्थ में आत्म के उद्धार के लिए तथा साक्षात्कार के लिए संन्यास ग्रहण करूँगा। यह संकल्प वाक्य है।' ऊँनमो नारायणाय' यह समाप्ति सूचक वाक्य हैं

ऊँ षष्ठे आत्माम्नायः परमात्मामठः सत्यसुसंप्रदायः नाभिकुण्डलिक्षेत्रं त्रिकुटीतीर्थं हंसो देवी परमहंसो देवता अजपासोऽहं महामन्त्रः ब्रहमविष्णु महेश्वराद्याः, जीव ब्रहमचारी हंसविद उपास्तिः, उपाधि भेद संन्यासार्थं ज्ञान-संन्यास ग्रहणं करिष्ये। ऊँ नमो नारायणायेति।

षष्ठ आत्मा आम्नाय परमात्मामठ, सत्यसु सम्प्रदाय नाभिकुण्डलीक्षेत्र त्रिकुटीतीर्थ, हंसो देवी, परमहंस देवता, अजपासोऽहं महामन्त्रः ब्रहमविष्णु महेश्वर आदि (ब्रहमनिष्ठ) जीव ब्रहमचारी, हंसविद की उपासना, उपाधि भेद के संन्यास के लिए ज्ञान सन्यास को ग्रहण करूँगा। यह संकल्प वाक्य है।

ऊँ सप्तमे जम्बूद्वीपः सम्यग्ज्ञानं शिखा न सूत्रं वेद्यवेदकः श्रद्धानदी विमला तीर्थ आत्मलिंगान्त्यर्थे विचारः नित्यानित्य विवेकानात्मनोपास्तिं आत्मतीर्थे आत्मोद्धारार्थे साक्षात्कारार्थे संन्यासग्रहणं करिष्ये। ऊँ नमोनारायणायेति।

सप्तम जम्बूद्वीप है, सम्यक ज्ञानं, शिखा है (न) यह सूत्र है, वेद्य का वेदक है, श्रद्धानदी जिमलातीर्थ, आत्मलिंगा की शान्ति का विचार, नित्य और अनित्य वस्तु के विवेक द्वारा आत्मा की उपासना करना, आत्मतीर्थ में आत्मा के उद्धार के लिए तथा साक्षात्कार के लिए संन्यास ग्रहण करूँगा।

मठाम्नायोपनिषत् के लेखक आचार्य शंकर ने मठों की स्थापना और वहाँ पर आचार्यो की नियुक्ति के बाद किया। क्योकि इसमें उस समय के प्रतिष्ठापित आचार्यों का नामोल्लेख मिलता है। इसके बाद 'मठाम्नाय सेतु' या ''मठाम्नाय महानुशासन'' लिखा गया जिसमें शंकराचार्यों की योग्यता आदि का एवं क्षेत्रों का विधिवत वर्णन है। जैसे कुरु, कश्मीर, कम्बोज, पांचाल आदि प्रदेश, अर्थात् भारतवर्ष के उत्तर तथा पश्चिम का अधिकांश भूभाग बदरीधामस्थ ज्योर्तिमठ के शासनाधीन हुआ, उसी प्रकार सिन्धु, सौवीर, सौराष्ट्र, महाराष्ट्र, प्रभृति प्रदेश अर्थात् भारतवर्ष का पश्चिम भूभाग शारदामठ के शासनाधीन हुआ। आन्ध्र, द्राविण, कर्णाट, केरल प्रभृति प्रदेश, अर्थात भारतवर्ष का पश्चिम भूभाग शारदामठ के शासनाधीन हुआ। आन्ध्र, द्रविण,कर्णाट, केरल प्रभृति प्रदेश,अर्थात भारत का दक्षिणी भूभाग श्रृंगेरी मठ के शासनाधीन हुआ एवें अंग, वंग, कलिंग, मगध,उत्कल तथा बर्बर प्रदेश अर्थात् भारतवर्ष का पूर्व भूभाग गोवर्धन मठ के शासनाधीन हुआ। इस प्रकार की व्यवस्था का उद्देश्य यह था। कि आचार्य शंकर के निर्वाण के अनन्तर समग्र देश में वर्णाश्रम धर्म वेदान्त के दृढ़ आश्रय में सुरक्षित रहकर तत् तत् मठ के अनुकूल स्थिर रहे।

यद्यपि मठाम्नायोपनिषत् के अनुसार मठाम्नाय व्यवस्थित नहीं है। जैसे गोवर्धन मठ के आचार्य पद पर बन या अरण्य नामा सन्यासी का शारदामठ में आश्रम या तीर्थ ,ज्योतिर्मठ में पर्वतनामा, श्रृंगेरी मठ में भारती नामा संन्यासी का अभिषेक होना चाहिए किन्तु अब वेसा नहीं है। मठाम्नायोपनिषत् के अनुसार आचार्य शंकर द्वारा प्रतिष्ठित पीठों पर अब तक कौन शंकराचार्य पद को धारण किए उनका विवरण निम्नवत है।

श्री द्वारका, शारदापीठ जगदगुरु शंकराचार्य परम्परा

1. श्री सुरेश्वराचार्य	2649	युधिष्ठर संवत्		
2. ब्रहम स्वरूपाचार्य	2691	युधिष्ठिर संवत्		
3. चित्सुखाचार्य	2715	युधिष्ठिर संवत्	ई.पू. 423	24 वर्ष
4. सर्वज्ञानाचार्य	2774	युधिष्ठिर संवत्	ई.पू. 364	59 वर्ष
5. ब्रहमानन्दतीर्थ	2823	युधिष्ठिर संवत्	ई.पू. 315	49 वर्ष
6. स्वरूपाविज्ञानाचार्य	2890	युधिष्ठिर संवत्	ई.पू. 248	67 वर्ष
7. मंगलमूर्त्याचार्य	2942	युधिष्ठिर संवत्	ई.पू. 196	52 वर्ष
8. भास्कराचार्य	2965	युधिष्ठिर संवत्	ई.पू. 173	23 वर्ष
9. प्रज्ञानाचार्य	3008	युधिष्ठिर सवंत्	ई.पू. 130	43 वर्ष
10. ब्रह्मज्योत्नाचार्य	3040	युधिष्ठिर सवंत्	ई.पू. 98	32 वर्ष
11. आनन्दवीर भावाचार्य	0025	विक्रम संवत्		
12. कलानिधि तीर्थ	0083	विक्रम संवत्		
13. चिद्विलासाचार्य	119	विक्रम संवत्		
14. विभूत्यानन्दचार्य	154	विक्रम संवत		
15. स्फूर्तिनिलय पाद	203	विक्रमसंवत्		
16. वरतन्तुपाद	249	विक्रम संवत्		
17. योगरूढ़ाचार्य	360	विक्रम संवत्		
18. विज्ञानडिण्डिमाचार्य	394	विक्रम संवत्		
19. विद्यातीर्थ	427	विक्रम संवत्		
20. चिच्छक्तिदाचार्य	483	विक्रमसंवत्		
21. विज्ञानेश्वरतीर्थ	511	विक्रम संवत्		

22. ऋतम्भराचार्य	572	विक्रम संवत्
23. अमरेश्वरगुरु	608	विक्रम संवत्
24. सर्वमुखतीर्थ	669	विक्रम संवत्
25. स्वानन्ददेशिक	729	विक्रम संवत्
26. समररसिक	799	विक्रम संवत्
27. नारायणाश्रम	836	विक्रम संवत्
28. वैकुण्ठाश्रम	885	विक्रम संवत्
29. त्रिविक्रमाश्रम	911	विक्रम संवत्
30. शशिशेखराश्रम	960	विक्रम संवत्
31. त्रयम्बकाश्रम	965	विक्रम संवत्
32. चिदम्बराश्रम	1001	विक्रम संवत्
33. केशवाश्रम	1060	विक्रम संवत्
34. चिदम्बराश्रम	1083	विक्रम संवत्
35. पद्मनाभाश्रम	1108	विक्रम संवत्
36. महादेवाश्रम	1148	विक्रम संवत्
37. सच्चिदानन्दाश्रम	1207	विक्रम संवत्
38. विद्याशंकराश्रम	1265	विक्रम संवत्
39. अभिनव सच्चिदानन्दाश्रम	1293	विक्रम संवत्
40. नृसिंहाश्रम	1326	विक्रम संवत्
41. वासुदेवाश्रम	1361	विक्रम संवत्
42. पुरुषोत्तमाश्रम	1394	विक्रम संवत्
43. ज्ञानार्धनाश्रम	1408	विक्रम संवत्
44. हरिहराश्रम	1411	विक्रम संवत्
45. भावाश्रम	1421	विक्रम संवत्
46. ब्रह्माश्रम	1436	विक्रम संवत्
47. वसनाश्रम	1456	विक्रम संवत्

48. सर्वज्ञानाश्रम	1489	विक्रम संवत्
49. प्रद्युम्नाश्रम	1495	विक्रम संवत्
50. गोविन्दाश्रम	1523	विक्रम संवत्
51. चिदाश्रम	1576	विक्रम संवत्
52. विश्वेश्वराश्रम	1608	विक्रम संवत्
53. दामोदराश्रम	1615	विक्रम संवत्
54. महादेवाश्रम	1616	विक्रम संवत्
55. अनिरुद्धाश्रम	1625	विक्रम संवत्
56. अच्युताश्रम	1629	विक्रम संवत्
57. माधवाश्रम	1685	विक्रम संवत्
58. आनन्दाश्रम	1716	विक्रम संवत्
59. विश्वरूपाश्रम	1721	विक्रम संवत्
60. चिद्घनाश्रम	1722	विक्रम संवत्
61. नृसिंहाश्रम	1735	विक्रम संवत्
62. मनोहराश्रम	1761	विक्रम संवत्
63. प्रकाशानन्द सरस्वती	1795	विक्रम संवत्
64. विशुद्धानन्दाश्रम	1798	विक्रम संवत्
65. वामनेश	1831	विक्रम संवत्
66. केशवाश्रम	1838	विक्रम संवत्
67. मधुसूदनाश्रम	1848	विक्रम संवत्
68. हयग्रीवाश्रम	1862	विक्रम संवत्
69. प्रकाशाश्रम	1863	विक्रम संवत्
70. हयग्रीवाश्रम सरस्वती	1874	विक्रम संवत्
71. श्री धराश्रम	1914	विक्रम संवत्
72. दामोदराश्रम	1929	विक्रम संवत्
73. केशवाश्रम.	1935	विक्रम संवत्

74. राजराजेश्वरशंकराश्रम	1958	विक्रम संवत्
75. श्री माधव तीर्थ	1972	विक्रम संवत्
76. श्री शान्तानन्द	1982	विक्रम संवत्
77. श्री चन्द्र शेखरश्रम	2001	विक्रम संवत्
78. श्री अभिनव सच्चिदानन्दतीर्थ	1982	विक्रम संवत्
79. श्री स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती	27 मई 1982 को अभिषिक्त अद्यावधि	

पूर्वाम्नाय पुरी पीठ गोबर्धन मठ जगद्गुरु शंकराचार्य परम्परा

1. श्री पद्मपाद	गतकलि संवत् 2642 ई.पू. 459	27 वर्ष
2. श्री शूलपाणि	गतकलि संवत् 2662 ई.पू. 439	20 वर्ष
3. श्री नारायण	गतकलि संवत् 2679 ई.पू. 422	17 वर्ष
4. श्री विद्यारण्य	गतकलि संवत् 2697 ई.पू. 404	18 वर्ष
5. श्री वामदेव	गतकलि संवत् 2713 ई.पू. 388	16 वर्ष
6. श्री पद्मनाभ	गतकलि संवत् 2728 ई.पू. 373	15 वर्ष
7. श्री जगन्नाथ	गतकलि संवत् 2742 ई.पू. 359	14 वर्ष
8. श्री मधुरेश्वर	गतकलि संवत् 2752 ई.पू. 349	10 वर्ष
9. श्री गोविन्द	गतकलि संवत् 2773 ई.पू. 328	21 वर्ष
10. श्रीधर	गतकलि संवत् 2791 ई.पू. 310	18 वर्ष
11. माधवानन्द	गतकलि संवत् 2808 ई.पू. 293	17 वर्ष
12. श्री कृष्णाब्रह्मानन्द	गतकलि संवत् 2826 ई.पू. 275	18 वर्ष
13. श्री रामानन्द	गतकलि संवत् 2842 ई.पू. 259	16 वर्ष
14. श्री वागीश्वर	गतकलि संवत् ई.पू. 244	15 वर्ष
15. श्री परमेश्वर	गतकलि संवत् 2871 ई.पू. 230	14 वर्ष
16. श्री गोपाल	गतकलि संवत् 2883 ई.पू. 218	12 वर्ष
17. श्री जनार्दन	गतकलि संवत् 2897 ई.पू. 204	14 वर्ष
18. श्री ज्ञानानन्द	गतकलि संवत् 2917 ई.पू. 184	20 वर्ष
19. श्री वृहदारण्य	गतकलि संवत् 2936 ई.पू. 165	19 वर्ष

20. श्री महादेव	गतकलि संवत् 2954 ई.पू. 147	18 वर्ष
21. श्री परमब्रह्मानन्द	गतकलि संवत् 2970 ई.पू. 131	16 वर्ष
22. श्री रामानन्द	गतकलि संवत् 2985 ई.पू. 116	15 वर्ष
23. श्री सदाशिव	गतकलि संवत् 2999 ई.पू. 102	14 वर्ष
24. श्री हरीश्वरानन्द	गतकलि संवत् 3011 ई.पू. 90	12 वर्ष
25. श्री बोधानन्द	गतकलि संवत् 3025 ई.पू. 76	14 वर्ष
26. श्री रामकृष्ण	गतकलि संवत् 3045 ई.पू. 56	20 वर्ष
27. चिद्बोधात्म	गतिकलि संवत् 3055 ई.पू. 46	10 वर्ष
28. श्री तत्वक्षवर	गतकलि संवत् 3073 ई.पू. 28	18 वर्ष
29. श्री शंकर	गतकलि संवत् 3089 ई.पू. 12	16 वर्ष
30. श्री वासुदेव	गतकलि संवत् 3109 ई.सन् 81	20 वर्ष
31. श्री हयग्रीव	गतकलि संवत् 3126 ई.सन् 25	17 वर्ष
32. श्री स्मृतीश्वर	गतकलि संवत् 3140 ई.सन् 39	14 वर्ष
33. श्री विद्यानन्द	गतकलि संवत् 3160 ई.सन् 59	20 वर्ष
34. श्री मुकुन्दानन्द	गतकलि संवत् 3178 ई.सन् 77	18 वर्ष
35. श्री हिरण्यगर्भ	गतकलि संवत् 3197 ई.सन् 96	19 वर्ष
36. श्री नित्यानन्द	गतकलि संवत् 3215 ई.सन् 114	18 वर्ष
37. श्री शिवानन्द	गतकलि संवत् 3231 ई.सन् 130	16 वर्ष
38. श्री योगीश्वर	गतकलि संवत् 3249 ई.सन् 148	18 वर्ष
39. श्री सुदर्शन	गतकलि संवत् 3264 ई.सन् 163	15 वर्ष
40. श्री व्योमकेश	गतकलि संवत् 3281 ई.सन् 180	17 वर्ष
41. श्री दामोदर	गतकलि संवत् 3302 ई.सन् 201	21 वर्ष
42. श्री योगानन्द	गतकलि संवत् 3322 ई.सन् 221	20 वर्ष
43. श्री गोलकेश	गतकलि संवत् 3343 ई.सन् 242	21 वर्ष
44. श्री कृष्णानन्द	गतकलि संवत् 3361 ई.सन् 260	18 वर्ष
45. श्री देवानन्द	गतकलि संवत् 3384 ई.सन् 283	23 वर्ष

46. श्री चन्द्रचूड़	गतकलि संवत् 3399 ई.सन् 298	15 वर्ष
47. श्री हलायुध	गतकलि संवत् 3413 ई.सन् 312	14 वर्ष
48. श्री सिद्धसेव्य	गतकलि संवत् 3428 ई.सन् 327	15 वर्ष
49. श्री तारकात्मा	गतकलि संवत् 3448 ई.सन् 347	20 वर्ष
50. श्री बोधायन	गतकलि संवत् 3469 ई.सन् 368	21 वर्ष
51. श्री श्रीधर	गतकलि संवत् 3488 ई.सन् 387	19 वर्ष
52. श्री नारायण	गतकलि संवत् 3506 ई.सन् 405	18 वर्ष
53. श्री सदाशिव	गतकलि संवत् 3521 ई.सन् 420	15 वर्ष
54. श्री जयकृष्ण	गतकलि संवत् 3534 ई.सन् 433	13 वर्ष
55. श्री विरूपाक्ष	गतकलि संवत् 3545 ई.सन् 444	11 वर्ष
56. श्री विद्यारण्य	गतकलि संवत् 3552 ई.सन् 451	07 वर्ष
57. श्री विशेश्वर	गतकलि संवत् 3572 ई.सन् 471	20 वर्ष
58. श्री विबुधेश्वर	गतकलि संवत् 3595 ई.सन् 495	23 वर्ष
59. श्री महेश्वर	गतकलि संवत् 3616 ई.सन् 515	21 वर्ष
60. श्री मधुसूदन	गतकलि संवत् 3635 ई.सन् 534	19 वर्ष
61. श्री रघूत्तम	गतकलि संवत् 3650 ई.सन् 549	15 वर्ष
62. श्री रामचन्द्र	गतकलि संवत् 3663 ई.सन् 562	13 वर्ष
63. श्री योगीन्द्र	गतकलि संवत् 3674 ई.सन् 573	11 वर्ष
64. श्री महेश्वर	गतकलि संवत् 3681 ई.सन् 580	07 वर्ष
65. श्री ओंकार	गतकलि संवत् 3708 ई.सन् 607	27 वर्ष
66. श्री नारायण	गतकलि संवत् 3730 ई.सन् 629	22 वर्ष
67. श्री जगन्नाथ	गतकलि संवत् 3751 ई.सन् 650	21 वर्ष
68. श्री श्रीधर	गतकलि संवत् 3770 ई.सन् 669	19 वर्ष
69. श्री रामचन्द्र	गतकलि संवत् 3783 ई.सन् 682	13 वर्ष
70. श्री ताम्राक्ष	गतकलि संवत् 3795 ई. सन् 694	12 वर्ष
71. श्री उग्रेश्वर	गतकलि संवत् 3810 ई.सन् 709	15 वर्ष

72. श्री उददण्ड	गतकलि संवत् 3828 ई.सन् 727	18 वर्ष
73. श्री संकर्षण	गतकलि संवत 3850 ई.सन् 749	22 वर्ष
74. श्री जनार्दन	गतकलि संवत् 3871 ई.सन् 770	21 वर्ष
75. श्री अखण्डात्मा	गतकलि संवत् 3884 ई.सन् 783	13 वर्ष
76. श्री दामोदर	गतकलि संवत् 3896 ई.सन् 795	12 वर्ष
77. श्री शिवानन्द	गतकलि संवत् 3911 ई.सन् 810	15 वर्ष
78. श्री गदाधर	गतकलि संवत् 3929 ई.सन् 828	18 वर्ष
79. श्री विद्याधर	गतकलि संवत् 3951 ई.सन् 850	22 वर्ष
80. श्री वामन	गतकलि संवत् 3972 ई.सन् 871	21 वर्ष
81. श्री शंकर	गतकलि संवत् 3986 ई.सन् 885	14 वर्ष
82. श्री नीलकण्ठ	गतकलि संवत् 3997 ई.सन् 896	11 वर्ष
83. श्री रामकृष्ण	गतकलि संवत् 4017 ई.सन् 916	20 वर्ष
84. श्री रघूत्तम	गतकलि संवत् 4037 ई.सन् 936	20 वर्ष
85. श्री दामोदर	गतकलि संवत 4047 ई.सन् 946	10 वर्ष
86. श्री गोपाल	गतकलि संवत् 4060 ई.सन् 959	13 वर्ष
87. श्री मृत्युंजय	गतकलि संवत् 4081 ई.सन् 980	21 वर्ष
88. श्री गोविन्द	गतकलि संवत् 4103 ई.सन् 1002	22 वर्ष
89. श्री वासुदेव	गतकलि संवत् 4115 ई.सन् 1014	12 वर्ष
90. श्री गंगाधर	गतकलि संवत् 4127 ई.सन् 1026	12 वर्ष
91. श्री सदाशिव	गतकलि संवत् 4148 ई.सन् 1047	21 वर्ष
92. श्री वामदेव	गतकलि संवत् 4170 ई.सन् 1069	22 वर्ष
93. श्री उपमन्यु	गतकलि संवत् 4185 ई.सन् 1085	15 वर्ष
94. श्री हयग्रीव	गतकलि संवत् 4201 ई.सन् 1100	16 वर्ष
95. श्री हरि	गतकलि संवत् 4219 ई.सन् 1118	18 वर्ष
96. श्री रघूत्तम	गतकलि संवत् 4238 ई.सन् 1137	19 वर्ष
97. श्री पुण्डरीकाक्ष	गतकलि संवत् 4245 ई.सन् 1144	07 वर्ष

98. श्री पराशंकर तीर्थ	गतकलि संवत् 4261 ई.सन् 1160	16 वर्ष
99. श्री वेदगर्भ	गतकलि संवत् 4279 ई.सन् 1178	18 वर्ष
100. श्री वेदान्तभास्कर	गतकलि संवत् 4299 ई.सन् 1198	20 वर्ष
101. श्री विज्ञानात्मा	गतकलि संवत् 4319 ई.सन् 1218	20 वर्ष
102. श्री शिवानन्द	गतकलि संवत् 4340 ई.सन् 1239	21 वर्ष
103. श्री महेश्वर	गतकलि संवत् 4360 ई.सन् 1359	20 वर्ष
104. श्री रामकृष्ण	गतकलि संवत् 4379 ई.सन् 1278	19 वर्ष
105. श्री वृषध्वज	गतकलि संवत् 4393 ई.सन् 1292	14 वर्ष
106. श्री शुद्धबोध	गतकलि संवत् 4406 ई.सन् 1305	13 वर्ष
107. श्री सोमेश्वर	गतकलि संवत् 4426 ई.सन् 1325	20 वर्ष
108. श्री गोपदेव	गतकलि संवत् 4447 ई.सन् 1346	21 वर्ष
109. श्री शंभुतीर्थ	गतकलि संवत् 4467 ई.सन् 1366	20 वर्ष
110. श्री भृगु	गतकलि संवत 4480 ई.सन् 1379	13 वर्ष
111. श्री केशवानन्द	गतकलि संवत् 4492 ई.सन् 1391	12 वर्ष
112. श्री विद्यानन्द	गतकलि संवत 4506 ई.सन् 1405	14 वर्ष
113. श्री वेदानन्द	गतकलि संवत् 4522 ई.सन् 1421	16 वर्ष
114. श्री बोधानन्द	गतकलि संवत् 4537 ई.सन् 1436	15 वर्ष
115. श्री सुतपानन्द	गतकलि संवत् 4561 ई.सन् 1460	24 वर्ष
116. श्री श्रीधर	गतकलि संवत् 4572 ई.सन् 1471	11 वर्ष
117. श्री जनार्दन	गतकलि संवत् 4593 ई.सन् 1492	21 वर्ष
118. श्री कामनाशनानन्द	गतकलि संवत् 4605 ई.सन् 1504	12 वर्ष
119. श्री हरिहरानन्द	गतकलि संवत् 4621 ई.सन् 1520	16 वर्ष
120. श्री गोपाल	गतकलि संवत् 4636 ई.सन् 1535	15 वर्ष
121. श्री कृष्णानन्द	गतकलि संवत् 4652 ई.सन् 1551	16 वर्ष
122. श्री माधवानन्द	गतकलि संवत् 4673 ई.सन् 1572	21 वर्ष
123. श्री मधुसूदन	गतकलि संवत् 4686 ई.सन् 1585	15 वर्ष

124. श्री गोविन्द	गतकलि संवत् 4702 ई.सन् 1601	16 वर्ष
125. श्री रघूत्तम	गतकलि संवत् 4722 ई.सन् 1620	21 वर्ष
126. श्री वामदेव	गतकलि संवत् 4737 ई.सन् 1636	15 वर्ष
127. श्री हृषीकेश	गतकलि संवत् 4750 ई.सन् 1649	13 वर्ष
128. श्री दामोदर	गतकलि संवत् 4775 ई.सन् 1674	25 वर्ष
129. श्री गोपालानन्द	गतकलि संवत् 4787 ई.सन् 1686	12 वर्ष
130. श्री गोविन्द	गतकलि संवत् 4801 ई.सन् 1700	14 वर्ष
131. श्री रघूनाथ	गतकलि संवत् 4820 ई.सन् 1719	19 वर्ष
132. श्री रामचन्द्र	गतकलि संवत् 4841 ई.सन् 1740	21 वर्ष
133. श्री गोविन्द	गतकलि संवत् 4856 ई.सन् 1755	15 वर्ष
134. श्री रघूनाथ	गतकलि संवत् 4871 ई.सन् 1770	15 वर्ष
135. श्री रामकृष्ण	गतकलि संवत् 4892 ई.सन् 1791	21 वर्ष
136. श्री मधूसूदन	गतकलि संवत् 4905 ई.सन् 1804	13 वर्ष
137. श्री दामोदर	गतकलि संवत् 4928 ई.सन् 1827	23 वर्ष
138. श्री रघूत्तम	गतकलि संवत् 4950 ई.सन् 1849	23 वर्ष
139. श्री शिव	गतकलि संवत् 4971 ई.सन् 1870	21 वर्ष
140. श्री लोकनाथ	गतकलि संवत् 4984 ई.सन् 1883	13 वर्ष
141. श्री दामोदर तीर्थ	गतकलि संवत् 4999 ई.सन् 1898	15 वर्ष
142. श्री मधुसूदन तीर्थ	गतकलि संवत् 5027 ई.सन् 1926	28 वर्ष
143. श्री भारतीकृष्ण तीर्थ	गतकलि संवत् 5061 ई.सन् 1060	34 वर्ष
144. श्री निरंजनदेव तीर्थ	गतकलि संवत् 5093 ई.सन् 1992	28 वर्ष

145. श्री निश्चलानन्द सरस्वती 9 फरवरी 1992 अद्यावधि

※ श्री अधोक्षजनान्द तीर्थ भी अपने को पुरी पीठ पर अभिषिक्त आचार्य बताते हैं। उनका कथन है कि वे स्वामी निरंजन देव तीर्थ के शिष्य हैं तथा उन्होंने ही उन्हें इस पद पर आचार्य मनोनीत किया था।

उत्तराम्नाय ज्योतिष्ठपीठ बदरिकाश्रम हिमालय जगद्गुरु शंकराचार्य परम्परा

आचार्य शंकर ने मात्र ग्यारह वर्ष अवस्था में ही बदरीनाथ धाम की यात्रा की थी। बौद्धों ने बदरीनाथ मन्दिर को ध्वस्त कर उनकी प्रतिमा को नारदाकुण्ड में फेंक दिया था। शंकराचार्य ने योगबल से उस प्रतिमा को ढूंढ लिया तथा मन्दिर में प्रतिष्ठापित कर दिया। तथा उन्होंने ध्वस्त मन्दिर का पुर्ननिर्माण भी कराया। चूँकि बदरीनाथ में शीतकाल में अधिक हिमपात होता है, अतएव उन्होंने बदरीनाथ में स्थापित ज्योतिर्मठ का स्थायी कार्यालय जोशी मठ में बनाया। पुराणों में ज्योतिर्मठ का गुप्त तीर्थ मुक्तिप्रद है। यहीं पर आचार्य शंकर ने दो वर्षों तक तप किया और उन्हें उस ज्योति का दर्शन हुआ। इस ज्योति को धर्म जयोति भी कहा जाता है। आचार्य पाद ने अपने प्रिय शिष्य त्रोटकाचार्य को ज्योर्तिमठ के प्रथम आचार्य पद पर अभिषिक्त किया और भगवान् बद्रीनारायण की पूजा अर्चना का भार उन्हीं के ऊपर छोड़ दिया। तबसे शंकराचार्य की व्यवस्था में बदरीनारायण मन्दिर की पूजा व्यवस्था चलती रही। ज्योतिष्पीठ की आचार्य परम्परा में इक्कीस आचार्य चिरजीवी थे।

तोटको विजयः कृष्णः कुमारो गरुड शुकः।
विन्ध्यो विशालो वकुलो वामनः सुन्दरोऽरुणः।।1।।
श्री निवासः सुखानन्दो विद्यानन्दः शिवोगिरिः।
विद्याधरो गुणानन्दो नारायण उमापतिः।।2।।
एते ज्योतिर्मठाधीशाः आचार्याश्चिरंजीविनः।
य एतान् संस्मरेन्नित्यं योगसिद्धिं स विन्दति।।3।।

ये वे आचार्य थे जिनका नाम बदरीनाथ मन्दिर की परम्परा में उल्लिखित हे। ज्योतिर्मठ के अन्तिम आचार्य स्वामी रामकृष्ण थे, जो सम्वत् 1833 तक पदारूढ़ रहे। उनके ब्रह्मीभूत हो जाने पर मठाम्नायोपनिषत् एवं मठाम्नाय महानुशासन में वर्णित योग्ताओं का धारक कोई व्यक्ति नहीं मिल सका। जिस कारण संवत 1998 (लगभग 165 वर्षों) तक इस पीठ पर किसी आचार्य का अभिषेक नहीं हो सका। इस दौरान मन्दिर की पूजा अर्चना का भार गढ़वाल नरेश के आदेश से वहाँ के पुजारी को, जो बाल ब्रह्मचारी होते थे,और जिन्हें रावल[1] की उपाधि दी गयी थी को सौप दिया। इस प्रकार यह व्यवस्था 1940 तक चलती रही। पूजन अर्चना की इस वैकल्पिक व्यवस्था के साथ साथ शंकराचार्य की गद्दी अविच्छिन्न रूप से बदरीनाथ के मन्दिर में लगती रही, जिसे आज भी बदरीनाथ के मन्दिर और जोशीमठ के नृसिंह मन्दिर में देखा जा सकता है। ज्योतिर्मठ के आचार्य विहीन एवं जीर्णशीर्ण हो जाने के बावजूद भी वहाँ आचार्य शंकर एवं त्रोटकाचार्य की गुफा, अमर शहतूतवृक्ष और भगवान् ज्योतिरीश्वर अस्तित्व में बने रहे।

1. रावल का मनोयन एक विहित प्रकिया से होता है। ये नैष्ठिक ब्रहमचारी होते हैं तथा केरल के नम्बूदरीपाद ब्राह्मण होते हैं। ध्यातव्य है कि आचार्य शंकर भी केरल के नम्बूदरीपाद ब्राह्मण थे। और उन्होंने ही यह व्यवस्था लागू की थीं।

सम्वत् 1958 (सन् 1901) में भारत धर्म महामण्डल की स्थापना काशी में हुई। स्थापना के 35 वर्ष बाद संवत् 1995 के आस पास महामण्डल के संस्थापक स्वामी ज्ञानानन्द सरस्वती का ध्यान ज्योतिर्मठ की ओर गया और उन्होंने अन्य पीठों के शंकराचार्यो, तत्कालीन राजाओं,नरेशों और सनातन धर्मी विद्वानों एवं विद्वत्परिषदों की सहमति से एक शिष्टमण्डल बदरकिाश्रम भेजा तथा उसकी जानकारी के आधार पर जोशीमठ की भूमि का पता लगाया। त्रोटकाचार्य की गुफा के आधार पर उन्होंने मठ की भूमि निश्चित करके टिहरी गढ़वाल के तत्कालीन जिलाधिकारी के सौजन्य से वह भूमि भी ज्योतिर्मठ के लिये प्राप्त कर लिया जो, सरकारी अभिलेखों में ज्योतिर्मठ के नाम से अंकित चली आ रही थी। इसके पश्चात् स्वामी ज्ञानानन्द जी महाराज ने भारत धर्म महामण्डल के तत्वावधान में तीनों शंकराचार्यो,राजाओं-महाराजाओं एवं सनतनधर्मी विद्वानों के सहयोग से परम् विद्वान, मनीषी, त्रिकालदर्शी एवं परमतपस्वी स्वामी ब्रहमानन्द सरस्वती को मठाम्नाय एवं महानुशासन में वर्णित सभी योग्यताओं का धारक मानकर ज्योर्तिमठ के शंकराचार्य पद पर चैत्र शुक्ल चतुर्थी संवत् 1998 को अभिषिक्त कर दिया इसकी घोषणा श्री भारत धर्म महामण्डल के तत्कालीन सभापति महाराजाधिराज सरकामेश्वरसिंह बहादुर K.C.I.E.D.D.Litt. ने काशी के अखिल भारतीय सनातन धर्म के महासम्मेलन में की। स्वामी ज्ञानानन्द जी ने जो भूमि प्राप्त की थी, वहाँ उन्होंने पूर्णाम्बा तथा ज्योतिरीश्वर मन्दिर का निर्माण तथा मठ का निर्माण किया। और काशी की वरुणा तट की भूमि को मिलाकर एक ट्रस्ट बनाया और स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती को एकमात्र ट्रस्टी बना दिया। स्वामी ब्रहमानन्द सरस्वती का शंकराचार्य पद पर सन् 1941 ई. में काशी में अभिषेक हुआ।

बदरीनाथ मन्दिर के पुजारी जो रावल होते हैं वे नैष्ठिक ब्रह्मचारी ही होते हैं,किन्तु तत्कालीन प्रभारी पुजारी श्री वासुदेव रावल ने रावलों की परम्परा के विपरीत विवाह कर लिया। फलतः स्थानीय लोगों ने इसका घोर विरोध किया। जिससे उत्तर प्रदेश की तत्कालीन सरकार ने "बदरीनाथ केदारनाथ टेम्पुल मैनेजमेण्ट एक्ट सन् 1939" पारित किया। और सर सीताराम को मन्दिर की व्यवस्था की देखरेख के लिए उस कमेटी का अध्यक्ष नियुक्त कर दिया। स्वामी ब्रहमानन्द सरस्वती जी का अभिषेक इस समिति के गठन के पश्चात् काशी में चैत्र शुक्ल चतुर्थी संवत् 1998 को हुआ था; किन्तु बदरी नाथ केदारनाथ टेम्पुल मैनेजमेण्ट समिति ने स्वामी ब्रहमानन्द जी को शंकराचार्य ज्योतिष्पीठ के रूप में मान्यता नहीं दी। परिणामस्वरूप स्वामी ब्रहमानन्द जी कभी बदरी नाथ गए ही नहीं। उन्होंनें 12 वर्षो तक शंकराचार्य पद के गुरुत्र भार का उत्तरदायित्व पूर्ण ढंग से निर्वाह किया। उच्छिन्न ज्योर्तिमठ के जीर्णोद्धार की व्यवस्था की और मठ के लगभग सभी अधूरे कार्यो को पूर्णता प्रदान की। 21 मई सन् 1953 ई. को स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती ब्रह्मलीन हो गए। भारत धर्म महामण्ड ने स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती जी महाराज के योग्यतम शिष्य परमवीतराग धर्म सम्राट् स्वामी करपात्री जी महाराज को उस पद पर अभिषिक्त करना चाहा,परन्तु पूज्यवर स्वामी जी महाराज ने इसे स्वीकार नहीं किया। इसके बाद भारत महामण्डल, धर्म सम्राट् स्वामी करपात्री जी महाराज काशी

विद्वतपरिषद् ने परमवीतराग, प्रख्यात सन्त स्वामी कृष्ण बोधाश्रम जी महाराज[1] को इस पद पर अभिषिक्त कर दिया। वे लगभग 20 वर्षों तक ज्योतिष्पीठ में जगद्गुरू शंकराचार्य पद रहे। वर्ष 1973 में सवामी कृष्णबोधाश्रम जी महाराज के ब्रह्मीभूत होने के बाद भारत धर्म-महामण्डल, धर्मसम्राट् स्वामी करपात्री जी महाराज, काशीविद्वत्परिषद् एवं श्री मद् आर्यावर्त्त विद्वत्परिषद् ने इस पीठ पर स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती जी महाराज[2] को अभिषिक्त कर दिया जो अद्यावधि इस पद पर विराजमान है।। किन्तु बद्रीनाथ मन्दिर में ज्योतिष्पीठ की लगने वाली गद्दी आज तक शासन ने किसी को भी नहीं सौंपी और वह आज भी वहाँ उसी रूप में अवस्थित है।[3]

ज्योतिष्पीठ बदरिकाश्रम आचार्य परम्परा

1. श्री तोटकाचार्य
2. श्री विजय
3. श्री कृष्ण
4. श्री कुमार
5. श्री गरूड़
6. श्री शुक्र
7. श्री विन्ध्य
8. श्री विशाल

---

1. स्वामी ब्रह्मानन्दसरस्वती के ब्रह्मीभूत होने के बाद पीठ में विवाद उत्पन्न हो गया। विवाद का कारण स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती की एक वसीयत थी जिसके अनुसार सर्वप्रथम स्वामी शान्तानन्द सरस्वती को शंकराचार्य होना था उनके बाद पं. द्वारका प्रसाद त्रिपाठी शास्त्री (स्वामी द्वारिकेश्वरानन्द सरस्वती) को तत्पश्चात् स्वामी विष्णु देवानन्द सरस्वती और इसके बाद स्वामी परमानन्द सरस्वती को शंकराचार्य होना था। इसी वसीयत को लेकर न्यायालय में मुकदमा हो गया जो आज तक चल रहा है। और वसीयत के अनुसार इन दिनों स्वामी वासुदेवानन्द सरस्वती इस पीठ पर अपने को शंकराचार्य के रूप मे घोषित करते हैं किन्तु इलाहाबाद के द्वितीय अपर सत्र न्यायाधीश ने बाद संख्या 5/3/89 स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती बनाम वासुदेवानन्द सरस्वती के बाद निर्णय देते हुए स्वामी वासुदेवानन्द सरस्वती को शंकराचार्य लिखने पद धारण करने छत्र चामर का प्रयोग करने पर रोक लगा दी थी। इस आदेश के विरूद्ध स्वामी वासुदेवानन्द सरस्वती ने प्रकीर्ण सिविल अपील संख्या 41/1999 सप्तम अपर जनपद न्यायाधीश इलाहाबाद के न्यायालय में वाद संस्थित किया था जिस पर दिनांक 27.04.2000 को विद्वान् न्यायाधीश ने निर्णय देते हुए अधीनस्थ न्यायालय द्वारा जारी निषेधाज्ञा को सही ठहराया और स्वामी वासुदेवानन्द सरस्वती द्वारा अपने को जगद्गुरु शंकराचार्य घोषित करने एवं छत्र चामर धारण करने पर लगी रोक को बरकरार रखा।
2. अब इसी पीठ पर स्वामी कृष्णबोधाश्रम श्री महाराज के कथित शिष्य स्वामी माधवाश्रम जी महाराज भी अपने को अभिषिक्त बताते हैं और उनका भी कथन है कि उन्हें काशी विद्वत्परिषद् आदिक संस्थाओं का समर्थन प्राप्त है। वे भी अपने को जगद्गुरु शंकराचार्य ज्योतिष्पीठ घोषित करते हैं।
3. ज्योतिष्पीठ परम्परा एक अनुशीलन- डॉ० परमहंस मिश्र, श्रीमाता पब्लिकेशन्स हनुमानभारवासी।

9. श्री बकुल

10. श्री वामन

11. श्री सुन्दर

12. श्री अरुण

13. श्री निवास

14. श्री आनन्द (सुखानन्द)

15. श्री विद्यानन्द

16. श्री शिव

17. श्री गिरि

18. श्री विद्याधर

19. श्री गुणानन्द

20. श्री नारायण

21. श्री उमापति

22. श्री बालकृष्णस्वामी	विक्रम संवत् 1557 सन् 1500 ई०	57 वर्ष
23. श्री हरिब्रह्मम स्वामी	विक्रम संवत् 1558 सन् 1501 ई०	01 वर्ष
24. श्री हरिस्मरण	विक्रम संवत् 1556 सन् 1509 ई०	08 वर्ष
25. श्री वृन्दावन स्वामी	विक्रम संवत् 1568 सन् 1511 ई०	02 वर्ष
26. श्री अनन्त नारायण	विक्रम संवत् 1569 सन् 1512 ई०	01 वर्ष
27. श्री भवानन्द	विक्रम संवत् 1583 सन् 1526 ई०	14 वर्ष
28. श्री कृष्णानन्द स्वमी	विक्रम संवत् 1593 सन् 1536 ई०	10 वर्ष
29. श्री हरिनारायण	विक्रम संवत् 1601 सन् 1544 ई०	08 वर्ष
30. श्री ब्रहमानन्द	विक्रम संवत् 1621 सन् 1564 ई०	20 वर्ष
31. श्री देवानन्द	विक्रम संवत् 1666 सन् 1579 ई०	15 वर्ष
32. श्री रघुनाथ	विक्रम संवत् 1661 सन् 1604 ई०	25 वर्ष
33. श्री पूर्णदेव	विक्रम संवत् 1687 सन् 1630 ई०	26 वर्ष
34. श्री कृष्णदेव	विक्रम संवत् 1696 सन् 1639 ई०	09 वर्ष

35. श्री शिवानन्द	विक्रम संवत् 1703	सन् 1646 ई०	07 वर्ष
36. श्री बालकृष्ण	विक्रम संवत् 1717	सन् 1660 ई०	14 वर्ष
37. श्री नारायण उपेन्द्र	विक्रम संवत् 1750	सन् 1693 ई०	33 वर्ष
38. श्री हरिश्चन्द्र	विक्रम संवत् 1763	सन् 1706 ई०	13 वर्ष
39. श्री सदानन्द	विक्रम संवत् 1773	सन् 1716 ई०	10 वर्ष
40. श्री केशवानन्द	विक्रम संवत् 1781	सन् 1724 ई०	08 वर्ष
41. श्री नारायणतीर्थ	विक्रम संवत् 1823	सन् 1766 ई०	42 वर्ष
42. श्री रामकृष्णतीर्थ	विक्रम संवत् 1833	सन् 1776 ई०	10 वर्ष
43. श्री ब्रह्मानन्द सरस्वती		सन् 1953 ई०	
44. श्री कृष्णबोधाश्रम		सन् 1973 ई०	

45. श्री स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती –अद्यावधि

श्री श्रृंगेरी शारदापीठ जगद्गुरु शंकराचार्य परम्परा

1. श्री शंकर भगवत्पादाचार्याः
2. श्री सुरेश्वराचार्यः
3. नित्यबोध धनाचार्यः
4. ज्ञानधनाचार्यः
5. ज्ञानोत्तमाचार्यः
6. ज्ञानगिर्याचार्यः
7. सिंहगिर्याचार्यः
8. ईश्वरतीर्थः
9. नरसिंहतीर्थः
10. विद्याशेकरतीर्थः
11. भारतीकृष्णतीर्थः
12. विद्यारण्यः
13. चन्द्रशेखर भारती-1
14. नरसिंह भारती-1

15. चन्द्रशेखर भारती-2
16. पुरुषोत्तम भारती-1
17. शंकरानन्द भारती
18. चन्द्रशेखर भारती-3
19. नरसिंह भारती-2
20. पुरुषोत्तम भारती-2
21. रामचन्द्र भारती
22. नरसिंह भारती-3
23. नरसिंह भारती-4
24. अभिनव नरसिंहभारती-1
25. सच्चिदानन्द भारती-1
26. नरसिंह भारती-5
27. सच्चिदानन्द भारती-2
28. अभिनव सच्चिदानन्द भारती-1
29. अभिनव नरसिंह भारती-2
30. सच्चिदानन्द भारती-3
31. अभिनव सच्चिदानन्द भारती-2
32. नरसिंह भारती-6
33. सच्चिदानन्द शिवाभिनव नरसिंह भारती
34. चन्द्रशेखर भारती-4
35. अभिनव विद्यातीर्थ
36. भारती कृष्ण तीर्थ

ऊर्ध्वाम्नाय काशी सुमेरु पीठ जगद्गुरु शंकराचार्य परम्परा

व्यासाचलीय तथा केरलीय शंकर विजय आदिक ग्रन्थों के अनुसार आचार्य शंकर ने काशी में सुमेरु मठ की स्थापना की, तथा महेश्वर[1] नामक अपने शिष्य को यहाँ का मठाधीश नियुक्त किया। सुमेरु यह संज्ञा इतर चार मठों के मध्य में अवस्थित होने के कारण हुई। यह सुमेरुमठ काशी तथा कैलास दानों स्थानों में है। क्योकि इस मठ के आचार्य ईश्वर (महेश्वर) अर्थात् शंकर जी हैं। यद्यपि मठाम्नायोपनिषद् में ऊर्ध्वाम्नाय सुमेरुमठ का ही वर्णन मिलता है, किन्तु ऊर्ध्वाम्नाय सुमेरुमठ का काशी सम्प्रदाय है, यह भी वहाँ लिखा है। इससे यह सिद्ध होता है कि दानों स्थानों के सुमेरू मठों का सम्प्रदाय एक ही है। क्योंकि इन दोनों मठों के आचार्य ईश्वर (शंकर) एक ही हैं।

काशी का सुमेरुमठ ऊर्ध्वाम्नाय इसलिए कहा जाता है, क्योंकि काशी भगवान् शंकर के त्रिशूल पर विराजमान है। यही कारण है कि इस पुण्य क्षेत्र में कोई भी धार्मिक कृत्य करने से पहले संकल्प करते समय 'अविमुक्त वाराणसी क्षेत्रे त्रिकण्टक विराजिते, यह कहा जाता है। श्री हर्ष ने काशी को स्वर्ग बताया है, अतएव काशिक सुमेरुमठ ऊर्ध्वाम्नाय कहा जाता है--

> वाराणसी निविशतेन वसुन्धरायां
>
> तत्र स्थितिर्मुखभुजां भुवने निवासः।
>
> तत्तीर्थ मुक्त वपुषामत एव मुक्तिः
>
> स्वार्गात्परं पदभुदेतु मुदे तु कीदृक्।। नैषधीयचरितम् सर्ग।। श्लोक 116।।

आचार्य शंकर के शिष्य महेश्वर प्रथमतः इस पीठ पर आचार्य मनोनीत किए गए थे। कालक्रम से विद्या के ह्रास तथा यवनों द्वारा उत्तर भारत के आक्रान्त होते रहने के कारण सुमेरुमठ ह्रास को प्राप्त हो गया और आचार्य परम्परा विलुप्त सी हो गयी। विलुप्त प्राय इस सुमेरु मठ का उद्धार काशी के विद्वानों, तथा विश्वबन्ध, धर्मसम्राट् अनन्त श्री विभूषित श्री स्वामी करपात्री जी महाराज ने किया। इस मठ के शंकराचार्य पद पर कवितार्किक चक्रवर्ती स्वामी महेश्वरानन्द सरस्वती को प्रतिष्ठापित किया। उनके ब्रहमीभूत होने के अनन्तर संवत् 2031 वि. माघ शुक्ल त्रयोदशी को काशी के समस्त मूर्धन्य विद्वानों ने तथा स्वामी करपात्री जी महाराज ने स्वामी शंकरानन्द सरस्वती को सुमेरुमठ के शंकराचार्य पद पर अभिषिक्त किया। और एक बार जब लोगों द्वारा सुमेरुमठ की प्रमाणिकता पर सन्देह व्यक्त किया जाने लगा तो स्वामी करपात्री जी महाराज ने सन् 1980 के 20 अगस्त के सन्मार्ग दैनिक के अंक में एक विस्तृत लेख लिखा जिसका शीर्षक था- 'सुमेरुपीठ शास्त्रीय है, मठाम्नायोपनिषद् द्वारा अनुमोदित है।

स्वामी करपात्री जी महाराज द्वारा सुमेरुपीठ का पुनरुद्धार किए जाने के बाद स्वामी महेश्वरानन्द सरस्वती धर्मसंघ में ही रहते रहे। दुर्गाकुण्ड, वाराणसी में ही स्थित धर्मसंघ संस्था में

1. भारतीय संस्कृति और साधना, महामहोपाध्याय आचार्य गोपीनाथ कविराज, पृष्ठ 113

अस्थायी तौर पर सुमेरुपीठ स्थापित की गयी। स्वामी शंकरानन्द सरस्वती भी यहीं धर्मसंघ में ही रहते रहे, बाद को उन्होंने अपने पुरूषार्थ से अस्सी वाराणसी स्थित डुमराँव कालोनी में सुमेरुमठ का निर्माण कराया। स्वामी शंकरानन्द सरस्वती जी महाराज के ब्रह्मलीन होने के बाद पीठ पर विवाद हो गया है।[1]

कांची कामकोटि पीठ- माधवाचार्य ने[2] शंकर विजय में लिखा है कि आचार्य शंकर ने कश्मीर में सर्वज्ञ पीठ पर आरूढ़ होकर वहाँ से अपने शिष्यों को विभिन्न मठों में मठकार्य निरीक्षण के लिए भेज दिया था, और स्वयं वहाँ से बदरी नारायण की ओर रवाना हो गए।

चिद्विलासेन्द्र ने अपने शंकर विजय में लिखा है कि, शंकराचार्य ने कांची में सर्वज्ञ पीठ पर आरोहण किया था, काश्मीर में नहीं। शंकर सम्प्रदय के मतानुसार शंकर अन्तिम समय तक कांची में ही थे, कम्पासरोवर-तीरवासिनी भगवती कामेश्वरी अथवा कामकोटि देवी की निरन्तर अर्चना करते हुए, अन्त में ब्रह्मानन्द को प्राप्त हुए थे, जबकि अन्यान्य जगहों पर वर्णन है कि शंकराचार्य केदारनाथ में जाकर ब्रह्मानन्द को प्राप्त हुए थे। कांची कामकोटि पीठ के 38वें शंकराचार्य, जिनका नाम धीरशंकर था, समग्र भारत का पर्यटन करके कश्मीर में सर्वज्ञ पीठ पर आरूढ़ हुए थे, और अन्त में हिमालय की दत्तात्रेय गुफा में तिरोहित हो गए थे। ऐसी आशंका है कि धीरशंकर की घटनाएँ आदि शंकराचार्य में किसी तरह आरोपित हो गयी है।

कहा जाता है कि शंकराचार्य कैलास से पाँच स्फटिक लिंग लाए थे। उनमें से चार लिंगों की स्थापना उन्होंने, बद्रीनारायण, नीलकण्ठ क्षेत्र (नेपाल) श्रृंगेरी और चिदम्बरम् में की थी।[3] सर्वश्रेष्ठ पंचम लिंग अपने पास रख छोड़ा था। वह योग लिंग नाम से **प्रसिद्ध** था। कांची में आचार्य शंकर हमेशा उसी की पूजा किया करते थे। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि शंकर कांची कामकोटि में बहुत दिनों तक रहे थे। किन्तु मठाम्नायोपनिषत् एवं मठाम्नाय महानुशासन में कांची कामकोटि का पीठ रूप में वर्णन नहीं मिलता है। इसलिए यह पीठ लोगों द्वारा मान्य नहीं है। किन्तु आद्य शंकराचार्य से सम्बन्धित होने के नाते वहाँ के आचार्य भी अपने को जगद्गुरु शंकराचार्य कांची कामकोटि पीठाधीश्वर घोषित करते हैं, तथा जनमानस में उनके प्रति श्रद्धा है। कांची कामकोटि पीठ के शंकराचार्य ने शंकराचार्य ज्योति ले जाकर केदारनाथ धाम में वहाँ स्थापित की थी जहाँ आद्य शेकराचार्य तिरोहित हुए थे । वहाँ केदारनाथ भगवान् के मन्दिर के पीछे शंकराचार्य की समाधि बनी है जिसका निर्माण कार्य भी कांची कामकोटि पीठ के शंकराचार्य ने ही कराया था। वहाँ पूर्व में चन्द्रशेखरेन्द्र सरस्वती जी महाराज पीठाधिपति थे तथा वर्तमान में जयेन्द्र सरस्वती जी कांची

---

1. शंकरानन्द सरस्वती के ब्रह्मीभूत होने के बाद स्वामी चिन्मयानन्द सरस्वती, स्वामी कपिलेश्वरानन्द सरस्वती और स्वामी नरेन्द्रानन्द सरस्वती सभी ही अपने को सुमेरुपीठ का शंकराचार्य घोषित करते हैं।
2. भारतीय संस्कृति और साधना- महामहोपाध्याय पं. गोपीनाथ कविराज पृष्ठ 118 से 112
3. तदैव

कामकोटि पीठ के शंकराचार्य है।

आद्य शंकराचार्य द्वारा वर्णित पीठों में ज्योर्तिमठ का क्षेत्र बदरिकाश्रम, द्वारकाशारदामठ का द्वारका, गोवर्धन मठ का पुरुषोत्तम, श्रृंगेरी का रामेश्वर ओर ऊर्ध्वाम्नाय सुमेरु मठ का काशी है। मठाम्नाय में किसी उपपीठ अथवा शाखा पीठ का उल्लेख नहीं मिलता है। इसलिए मठाम्नाय में वर्णित पीठों के अतिरिक्त पीठ मान्यता प्राप्त एवं शास्त्र सम्मत नहीं हैं।

शंकराचार्य पद की योग्यता- शंकराचार्य का पद सामान्य मठों के महन्थों से भिन्न होता है, तथा वे मात्र मठ की सम्पत्ति के ही रक्षक नहीं होते हैं। शंकराचार्य का पद एक मिशन है। उसमें आचार्य का दायित्व शांकर सिद्धान्तों का प्रचार प्रसार करना तथा सत्य सनातन धर्म का भी प्रचार प्रसार करना एवं उसका संरक्षण एवं सम्वर्द्धन करना होता है। इसलिए उसे वेद-वेदांगादि विशारद तथा सभी शास्त्रों के समन्वय का ज्ञाता होना आवश्यक है। उसे प्रस्थानत्रयी का ज्ञाता होना चाहिए। सर्वप्रथम तों उसका ब्राह्मण होना आवश्यक है। इसके बाद नैष्ठिक ब्रहमचारी होना चाहिए तदुपरान्त विहित प्रक्रिया से सन्यासी होना चाहिए। ऐसे योग्यता सम्पन्न व्यक्ति को शास्त्रों में 'सलिंग सन्यासी' कहा गया है। अतएव सलिंग सन्यासी व्यक्ति ही शंकराचार्य पद के लिए योग्य होता है। मठाम्नाय में कहा गया है कि-

शुचिर्जितेन्द्रियो वेदवेदांग विशारदः।
योगज्ञः सर्वशास्त्राणां स मदास्थानमाप्नुयात।।57।।

सन्यास ग्रहण करने के लिए नैष्ठिक ब्रहमचारी भी विहित हैं और सद्‌गृहस्थ भी। यदि किसी सद्‌गृहस्थ को वैराग्य हो जाय तो वह भी सन्यास ग्रहण कर सकता है और दानों प्रकार के सन्यासी समान ही होगे। शंकराचार्य पद पर नैष्ठिक ब्रह्मचारी से सन्यास ग्रहण किए हुए व्यक्ति भी अभिषिक्त हो सकते हैं, तथा सद्‌गृहस्थ से प्रबल वैराग्य होने पर सन्यास ग्रहण किए हुए व्यक्ति भी अभिषिक्त हो सकते हैं। आद्य शंकराचार्य के शिष्य सुरेश्वराचार्य (मण्डन) तो सद्‌गृहस्थ ही थे।

इस प्रकार पवित्र,जितेन्द्रिय,वेदांग विशारद,सभी शास्त्रों में निपुण सन्यासी ही आचार्य पद को सुशोभित कर सकते हैं। जिनमें इन गुणों का अभाव हो, उन्हें पीठच्युत करने का जनता को अधिकार है।

उक्त लक्षण सम्पन्नश्चेन्मत्पीठ-भाग्वभवेत्।
अन्यथाऽरूढपीठोऽपिनिग्रहार्हो मनीषिणाम्।।58।।

इस श्लोक में शब्द 'मनीषी' का तात्पर्य शांकर मतावलम्बी, सनातनी सच्चरित्र, प्रकाण्ड विद्वान् सन्यासी और उनके वर्ग तथा सद्‌गृहस्थ से है। इस सम्बन्ध में 'शंकर सम्प्रदाय से भिन्न परम्पराओं के आचार्यों अथवा विद्वानों या विद्वत्परिषदों की भूमिका सहायक सिद्ध हो सकती है किन्तु निर्णायक नहीं ।

ईशाषष्टोत्तरशतोपनिषद् में वर्णित सन्यासोपनिषद् के पृष्ठ संख्या 412 पर उन व्यक्तियों का वर्णन है जो सन्यास ग्रहण करने के अयोग्य हैं

अथ षण्डः पतितोंविकलः स्त्रैणों बधिरोऽर्भको मूकः पाखण्डश्चक्री लिंगी कुष्ठी बैखानसहरद्विजौभृतकाध्यापकः शिपिविष्टोऽनग्निको नास्तिको वैराग्यवन्तोऽप्येते न संन्यासार्हाः। संन्यस्ता यद्यपि महावाक्योपदेशे नाधिकरिणः।। आरूढ़पतितापत्यं कुनखी श्याव-दन्तकः। क्षीणस्तथा विकलो नैव संन्यस्तुमर्हति। संप्रत्यवशितानां च महापातकिनां तथा। बाल्यानामभिशस्तानां संन्यासं नैव कारयेत्।। अर्थात्, नपुंसक, पति अंगविकल, स्त्री के वश में रहने वाला बहरा, बच्चा गूंगा, ढोंगी, चक्री, लिंगी, कुष्ठी,धन के लिए तप करने वाला, जादू टोना आदि द्वारा धन कमाने वाला वेतन भोगी अध्यापक, चर्मरोगी, अग्नि होत्र न करने वाला, नास्तिक, सन्यास के बाद पुनः गृहस्थ में जाकर पैदा किया हुआ बच्चा, नख में रोग, वाल, पीले व काले दाँतों वाला, मदहोश करने की इच्छा रखने वाला, महापातकी समय पर जिसका उपनयन न हुआ हो लांछन या आरोप लगा व्यक्ति सन्यास ग्रहण करने के अधिकार नहीं है।

इसी प्रकार का ही वर्णन नारद परिब्राजकोपनिषद् के पृष्ठ संख्या 263 पर भी मिलता है वचन निम्नवत है।-

अथ हैनं नारदः पितामहं पप्रच्छ भगवन् केन संन्यासाधिकारी चैत्येवमादौ संन्यासाधिकारिणं निरूप्य पश्चात्संन्यास विधिरुच्यते अवहितः श्रृणु। अथ षण्डः पतितोऽङविकलः स्त्रैणौ, बधिरोऽर्भको मूकः पाखण्डश्चक्री लिंगी वैखान सहरद्विजौ भृतकाध्यापकः शिपिविष्टोऽनग्निको वैराग्यवन्तोऽप्येते न संन्यसार्हाः। नारद जी ने पितामह ब्रह्मा जी से पूछा कि कौन व्यक्ति सन्यास का अधिकारी नहीं है, और कौन है? ब्रह्मा जी ने कहा कि नपुंसक, पतित, अंग विकल, स्त्रैण, बधिर, अर्मक, (बच्चा), गूंगा, पाखण्डी, चक्री, लिंगी, वैखानस हरद्विज, वेतनभेगी, अध्यापक, शिपिविष्ट, चर्मरोगी, जिसके लिंग की मणि स्वाभाविक रूप से अनावृत हो, जो ब्राह्मण अग्नि होत्र न करता हो, ऐसे लोग सन्यास के अधिकारी नहीं है।

उपरोक्त में से यदि कोई कदाचित सन्यास ग्रहण कर भी लिया हो तो वह आचार्य पद के योग्य नहीं है। यदि आचार्य हो तो उसे पदच्युत कर देना चाहिए। विदेश गमन करने वाला व्यक्ति भी आचार्य पद पर रहने योग्य नहीं है। यदि कोई व्यक्ति जो विदेश गमन किया हो किन्तु आचार्य पद पर हो तो उसे भी मनीषियों को चाहिए कि आचार्य पद से च्युत कर दें।

जगद्गुरु पदवी- शंकराचार्य पद पर अभिषिक्त व्यक्ति "जगद्गुरु" पदवी से विभूषित होगा इस सम्बन्ध में मठाम्नाय सेतु का यह श्लोक ही प्रमाण है-

'कृते विश्वगुरु ब्रह्मा त्रेतायामृषि सत्तमः।
द्वापरे व्यास एव स्यात् कलावत्र भवाम्यहम्।।73।।

अर्थात् सत्युग में ब्रह्मा, त्रेता में मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठ द्वापर में वेदव्यास तथा कलियुग में मैं (शंकराचार्य) जगद्गुरु हूँ। इसीलिए 'जगद्गुरु शंकराचार्य' लिखा एवं कहा जाता है।

शांकरपीठ पर अभिषिक्त व्यक्ति आद्यशंकराचार्य का ही स्वरूप

आद्य शंकराचार्य ने विशेष रूप से जनता का ध्यान आकृष्ट किया था कि पीठाधीश वस्तुतः उन्हीं का प्रतिनिधि है। इसीलिए शांकर पीठों के आचार्य शंकराचार्य की उपाधि धारण करते हैं। इस सम्बन्ध में भगवान् आद्यशंकराचार्य का ही यह मत स्वयं प्रमाण है-

अस्मत्पीठसमारूढ़ः परिव्राडुक्तलक्षणः।
अहमेवेति विज्ञेयो 'यस्य देव' इति श्रुतेः।।60।।

अर्थात, पद हेतु अभीष्ट समस्त योग्यताओं वाला सन्यासी पीठ पर अभिषिक्त होने पर स्वयं मेरा स्वरूप ही माना जाएगा। तथा उसे स्वयं भी शंकराचार्य का स्वरूप ही समझना चाहिए। निष्कर्षतः यह सिद्ध होता है पीठ पर अभिषिक्त आचार्य शंकराचार्य के प्रतिनिधि नहीं अपितु सक्षात् शंकराचार्य ही होते हैं।

पीठ के उच्छेद का निषेध- आद्य शंकराचार्य ने धर्म के प्रचार-प्रसार एवं सनातन धर्म के संरक्षण हेतु ही इन पीठों की स्थापना की थी, अतएव उनकी इच्छा थी कि इन पीठों का उच्छेद किसी भी रूप में न हो। उनका कथन था कि " अधिकारी सन्यासी अर्थात् योग्य सन्यासी के उपलबघ होने पर पीठ का उच्छेद कथमपि नहीं होना चाहिए, चाहे बहुत से विघ्न ही क्यों न उपस्थित हों। यही सनातन धर्म है।'

न जातु मठमुच्छिन्द्याद् अधिकारिण्युपस्थिते।
विघ्नानामपि बाहुल्यदेष धर्मः सनातनः।।59।।

एक पीठ पर दो शंकराचार्यों का निषेध, किन्तु एक ही शंकराचार्य दो या दो से अधिक पीठों के दायित्वों का निर्वहन कर सकते हैं- मठाम्नाय महानुशासन में यह व्यवस्था है कि एक पीठ पर दो शंकराचार्य एक साथ नहीं हो सकते हैं किन्तु एक ही व्यक्ति दो पीठों का आचार्य न हो ऐसी मनाही कहीं नहीं की गयी है।[1] इस सम्बन्ध में आचार्य श्री के ही वचन प्रमाण हैं-

एक एवाभिषेच्यः यादन्ते लक्षणसम्मतः।
तत्तत्पीठक्रमेणैव न बहुर्युज्यते क्वचित्।।61।।
परिब्राडार्य-मार्यादां मामकीनां यथाविधि।
चतुष्पीठाधिगां सत्तां प्रयुज्याच्च पृथक् पृथक।।56।।

1. यह कथन एक उदाहरण से और स्पष्ट है- जैसे एक व्यक्ति एक साथ दो राज्यों का राज्यपाल तो हो सकता है किन्तु एक ही राज्य के दो राज्यपाल एक साथ नहीं हो सकता ।

अर्थात् किसी पीठ के आचार्य के ब्रह्मत्व प्राप्ति के अनन्तर उस पीठ पर एक ही लक्षण सम्मत (मठाम्नाय महानुशासन मे वर्णित योग्यताओं के धारक) आचार्य का उस पीठ में अभिषेक होना चाहिए और कभी भी एक से अधिक आचार्य का अभिषेक नहीं होना चाहिए। उपर्युक्त श्लोक में आचार्य ने इस तथ्य को रेखांकित किया है कि उनकी मर्यादा से सम्पन्न एवं तत्तल्लक्षण युक्त एक ही आचार्य अलग अलग चारों पीठों के आचार्यत्व का दायित्व वहन कर सकता है। व्याकरण की दृष्टि से जहाँ परिव्राड(कर्ता) तथा प्रयुंज्याद (क्रिया) एक वचन है वहीं इनका कर्म चतुष्पीठाधिगां सत्तां बहुत्व का बोधक है अर्थात एक ही आचार्य चारों पीठों की सत्ता का भोक्ता हो सकता है।

पूर्व में भी ऐसे दृष्टान्त हैं जहाँ एक ही आचार्य दो पीठों के दायित्वों का निर्वाह करते रहे हैं। आद्य शंकराचार्य ने द्वारकाशारदापीठ पर सुरेश्वराचार्य को तथा श्रृंगेरी पीठ पर हस्तामलक को आचार्य मनोनीत किया था, किन्तु हस्तामलक के अत्यन्त अर्न्तमुखी होने के कारण वे आचार्य पद के दायित्वों का निर्वाह सम्यग्प्रकारेण नहीं कर पाते थे। अतएव सुरेश्वराचार्य दोनों ही पीठों के आचार्य के दायित्वों का निर्वाह करते रहे। संभवतः यही कारण है कि भगवती शारदाम्बा का आदि मन्दिर द्वारका-पीठ में होने के कारण, इसके साथ लगा विरुद् 'शारदामठ' आचार्य सुरेश्वर के द्वारा श्रृंगेरी मठ की देख रेख करते और वहाँ रहते समय उक्त देवी की पूजा अर्चा करते रहने से 'शारदा' श्रृंगेरीपीठ के साथ व्यवहृत होने लगा हो।[1]

क्षेत्राधिकार का सम्मान- आद्य शंकराचार्य ने इस बात की व्यवस्था की,कि कोई भी आचार्य एक दूसरे के क्षेत्राधिकार का अतिक्रमण नहीं करेगा तथा अपने ही क्षेत्र में धर्मस्व[2] का संग्रह करेगा। तथापि मतवैभिन्य होने पर परस्पर मिलकर उसका समाधान खोजेंगे ओर उसे हल कर लेंगे। इस सम्बन्ध आचार्य श्री के वचन इस प्रकार हैं-

परस्पर विभागे तु न प्रवेशः कदाचन।
परस्परेण कर्त्तव्या ह्याचार्येण व्यवस्थितिः।।54।।
धरामालम्ब्य राजानः प्रजाभ्यः करभागिनः।
कृताधिकारा आचार्या धर्मतस्तद्वदेव हि।।6।।

धर्मस्व संग्रह में मर्यादा के अतिक्रमण अर्थात् क्षेत्राधिकार के अतिकमण से परस्पर कलह बढ़ेगी इसलिए आचार्य श्री ने क्षेत्राधिकर के अतिक्रमण का निषेध किया-

मर्यादाया विनाशेन लुप्येरन् नियमाः शुभाः।
कलहांगारसम्पत्तिरतस्तां परिवर्जयेत्।।55।।

1. मठाम्नाय महानुशासनम्- टीकाकार-कामेश्वर नाथ मिश्र
2. धर्मस्व- धर्म के प्रचारार्थ चन्दा या कर। राज्य व्यवस्था के लिए जैसे सरकार कर लगाती है जिसे राजस्व कहते हैं उसी प्रकार धार्मिक व्यवस्था के कर को धर्मस्व कहते हैं।

शंकराचार्यों के लिए इन्द्र की तरह चिह्न धारण करने का विधान

जिस प्रकार स्वर्ग में शासन के लिए इन्द्र सिंहासन पर बैठते हैं एवं छत्र चामर को धारण करते हैं; तथा वैदिक व्यवस्था में पृथ्वी पति अर्थात् राजा, इन्द्र का प्रतिनिधि होता है फलतः वह भी सिंहासन पर आरूढ़ होकर छत्र चामर धारण करता है, उसी प्रकार शंकराचार्य भी धर्म के पोषक हैं धर्म के बारे में उनकी व्यवस्था व निर्णय मान्य है। इसलिए शंकराचार्यों को भी सम्राट् की भाँति चिह्नों को धारण करना चाहिए, जिससे सामान्य जनों पर उनके व्यक्तित्त्व का प्रभाव पड़े। ऐसा ही महाराज सुधन्वा का अनुरोध भी था किन्तु छत्र, चामर, सिंहासन धारण करने के बाद भी उन्हें उससे निर्लिप्त रहना होगा। इस सम्बन्ध में सुधन्वा का ताम्रलेख भी है।[1]

सुधन्वनः समौत्सुक्यनिवृत्यै धर्म-हेतवे।
देवराजोपचारांश्च यथावदनुपालयेत् ।।62।।
केवलं धर्म मुद्दिश्य विभवो ब्रह्मचेतसाम्।
विहितश्चोपकाराय पद्मपत्रनयं व्रजेत्।।63।।

जिस प्रकार राजा राजव्यवस्था हेतु प्रजा से कर लेता है उसी प्रकार पीठाधीश्वर भी धर्मानुसार कर ग्रहण करने के अधिकारी हैं।

धरामालम्ब्य राजानः प्रजाभ्यः, करभागिनः।
कृताधिकारा आचार्या धर्मतस्तद्वदेव हि ।।66।।

विशेष- श्रृंगेरी पीठ में अभी भी टीपू सुलतान द्वारा प्रदत्त मुकुट आज भी वहाँ के शंकराचार्य के पास है।

❑

1. सुधन्वा का ताम्रलेख पुस्तक में मूलरूप में दिया गया है। सुधन्वा आद्य शंकराचार्य के समकालीन थे। आदि शंकराचार्य को युधिष्ठिर शक संवत् 2633 आश्विन शुक्ल 15 की तिथि से अंकित इनके द्वारा अर्पित की गयी ताम्रपत्र-विज्ञप्ति प्राप्त है।

महाराज सुधन्वा की ताम्र पत्र-विज्ञप्ति

श्री महाकालनाथाय नमः

श्री महाकाल्यै नमः

श्री मत्सदाशिवापरावतार मूति चतुषष्टिकलाविलास विहार मूर्ति बौद्धादिसर्ववादिदानव नृसिंहमूर्त्ति वर्णाश्रम वैदिक सिद्धान्तोद्धारक मूर्त्ति-मामकीन मूर्त्ति निखिल योगि चक्रवर्त्ति-श्री मच्छंकर भगवत्पाद पादपद्मयोः भ्रमरायमाण सुधन्वनो मम सोमवंश चूड़ामणि- युधिष्ठिर पारम्पर्य परिप्राप्त भारतवर्षस्यांजलि बन्ध पूर्विकेयं राजन्यस्य विज्ञप्तिः। भगवद्भिर्दिग्विजयोऽकारि। सर्ववादिनः पराकृताः। सर्ववर्णा आश्रमाश्च कृतयुगवत्पूर्णे वैदिकाध्वनि नियोजिताः सन्तो यथाशास्त्रमाचरन्ति हि धर्मम्। ब्रह्मविष्णु महेश्वर महेश्वरी स्थानान्यशेष देशवर्त्तीन्युद्धृतानि। सर्वं ब्रह्मकुलमुद्धारितम्। विशिष्यास्मद्राज्यकुलमान्वीक्षिक्याद्यशेष। राजतन्त्र परिशीलनेनोन्नीतं भवति। बह्मक्षत्राद्यस्मत्प्रमुख निखिल विनेयलोक सम्प्रार्थनया चतस्रो धर्मराजधान्यो जगन्नाथ बदरी-द्वारका-शृंगर्षिक्षेत्रेषु भोगवर्धन ज्योतिश्शारदा शृंगेरीमठापरसंज्ञकाः संस्थापिताः। तत्रोत्तरदिशो योगिजनप्राधान्येन धर्ममर्यादारक्षणं सुकरमेवेति ज्योर्तिमठे श्री तोटकापरनाम्नः प्रतर्दनाचार्यानंथ शृंगेर्य्याश्रमेशृंगर्षिसमस्वभावान्पृथ्वी-धरामिधेय हस्तामलकाचार्यान् भोगवर्धने स्वत एवाभिमतत्वेनात्यन्तोग्रस्वभावानपि सर्वज्ञकल्पपद्मपादापरनाम सनन्दानाचार्यानथ बौद्धकापालिकादि सकलवादि भूयिष्ठपश्चिमस्यां दिशि वादिदैत्यांकुरः पुनर्मा भवत्विति शारदापीठे किल द्वारकायां जैनैरुत्सदितवज्रनाभ निर्मितभगवदालयादिदुर्दशां दूरीकृत्य भगवद्भिस्त्रिलोकसुन्दरनाम्ना पुनस्सन्निबद्धभगवदालय-श्रीकृष्णादिसकल मर्यादासुसंस्कृतायामधिगताशेषलौकि-वैदिकतन्त्र-विश्वविख्यातकीर्ति सर्वज्ञानमयान्विश्वरूपापरनाम सुरेश्वराचायांश्चस्मत्सर्व लोकाभिमति पूर्वकमभिषिच्यैवं चतुर्भ्य आचार्येभ्यश्चतस्त्रो दिश आदिष्टा भारतवर्षसस्य। त एते तत्तत्पीठप्रणाल्या निजनिजमेव मण्डलं गोपायन्तों वैदिकमार्ग मुभ्दासयन्तु। सर्वे वयं तत्तन्मण्डलस्था ब्रह्क्षत्रादयस्तत्तन्मण्डलस्यैवाचार्यस्याधि ाकाराधिकृता वर्तिष्यामहे च। महद्विनिर्णय प्रसक्तौ तु सुरेश्वराचार्या एवोक्तलक्षणतः सर्वत्रैव व्यवस्थापका भवन्तु भगवतामनुशासनाच्च। अस्मद्राजसत्तेव निरंकुश गुरूसत्ताप्युक्तमर्यादाया जगत्यविचलं विचलतु। परिव्राजको हि महाकुलीनत्ववैदुष्यादि विशिष्टाचार्य लक्षणैरन्विति एव श्री भगवत् पादपीठानामधिकारमर्हति न तु विनिमयेनेत्येवमादिनियमबन्धे भगवदाज्ञासमवबुद्धस्स मस्तै रथास्मदादि ब्रह्मक्षत्रादि वंशोद्भवैः परप्रेम्णोत्तमांगेनादियत इत्येतां विज्ञप्ति मंगीकुर्वन्तु भगवन्त इति स्वस्त्यस्तु लोकेभ्यः। युधिष्ठिरशके 266-आश्विन शुक्ल 15।।

राजा सुधन्वा की ताम्रपत्र-विज्ञप्ति का हिन्दी भाषान्तर

श्री महाकाल नाथ को नमस्कार!

श्री महाकाली को नमस्कार!

श्री मत् सदाशिव की अपरावतार मूर्ति, चौसठ कलाओं के विलास की विहार मूर्ति, बौद्ध आदि समस्त वादि रूप दानवों के लिए नृसिंह मूर्ति, वर्णाश्रम युक्त वैदिक सिद्धान्त की उद्धारक मूर्ति, मेरे साम्राज्य की व्यवस्थापक मूर्ति, विश्वेश्वर और जगद्गुरु पद से संसार द्वारा गेय मूर्ति, सम्पूर्ण-योगियों के चक्रवर्ती श्रीमत् शंकर भगवत्पाद के पादपद्मों के भ्रमर मुझ राजा सुधन्वा की, जिसे सोमवंश चूड़ामणि युधिष्ठिर की परम्परा से भारतवर्ष की राजसत्ता प्राप्त है करबद्ध विज्ञप्ति। भगवत् ने दिग्विजय कर लिया है। सभी वादियों को पराजित कर दिया है। समस्त वर्ण और आश्रम इस समय सत्ययुग के समान वैदिक मार्ग में नियुक्त होकर शास्त्रानुसार धर्माचरण कर रहे हैं। (भगवत्पाद) सम्पूर्ण देश में अवस्थित ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर तथा महेश्वरी के देवस्थानों का उद्धार कर चुके हैं। समस्त ब्राह्मण कुलों का उद्धार कर चुके हैं। विशेषकर आन्वीक्षकी आदि अन्य राजतंत्र के परिशीलन से हम राजकुलों की उन्नति हुई है। हम लोगों जैसे प्रमुख ब्राह्मण, क्षत्रिय, आदि तथा सम्पूर्ण लोक की प्रार्थना पर (भगवत्पादन) चार धर्म राजधानियों को गोवर्द्धन, ज्योति, शारदा, तथा श्रृंगेरी मठ के नाम से जगन्नाथ, बदरी, द्वारका तथा श्रृंग ऋषि के क्षेत्र में संस्थापित किया। वहाँ उत्तर दिशा में योगिजनों की प्रधानता से धर्ममर्यादा की रक्षा सरलता से करने हेतु ज्योर्तिमठ में श्री तोटक अपरनाम प्रतर्दनाचार्य को, श्रृंगऋषि के आश्रम में उनहीं के समान स्वभाव वाले पृथ्वी घर अपरनाम हस्तामलकाचार्य को, भोगवर्द्धन में अपने से ही विचारणीय विषयों में अभिमत रख ने वाले, अत्यन्त उग्रस्वभाव के होने पर भी सब कुछ जानने में समर्थ पद्मपादअपरनाम सनन्दनाचार्य को तथा बौद्ध कापालिक आदि समस्त वादियों से भरपूर पश्चिम दिशा में वादि दैत्यांकुर पुनः अंकुरित न हो जाये इस प्रयोजन से शादापीठ के द्वारका में (कृष्ण के प्रपौत्र) वज्रनाभ द्वारा निर्मित तथा जैनियों के द्वारा ध्वस्त भगवदालय में श्री कृष्ण को सम्पूर्ण मर्यादा से सुसंस्कृत कर प्रतिष्ठित कर समस्त लौकिक तथा वैदिक तंत्र में विश्वविख्यात कीर्ति प्रात सर्वज्ञानमय विश्वरूप अपरनाम सुरेश्वराचार्य को हम सब लोगों की लोकसम्मति से अभिषिक्त कर भारतवर्ष की चारों दिशाओं में चार आचार्यों को अधिष्ठित कर आदेश दिया कि वे अपने पीठ मार्यादा के अनुसार अपने अपने मण्डल की रक्षा करते हुए वैदिक मार्ग को उद्भासित करें। हम सभी उन मण्डलस्थ ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि उन मण्डलों के अधिकारी आचार्यों की आज्ञा का पालन करते हुए व्यवहार करें। महत्त्वपूर्ण निर्णय की स्थिति में उपर्युक्त लक्षणों से युक्त सुरेश्वराचार्य सर्वत्र व्यवस्थापक हों यह भगवत्पाद का अनुशासन है। हमारी राजसत्ता के समान निरंकुश गुरुसत्ता मर्यादानुसार संसार में अविचल रूप से अच्छी तरह चले। महाकुलीन,वैदुष्यादि विशिष्ट आचार्य गुणों से युक्त परिव्राजक ही श्री भगवत्पाद के पीठों में अधिकार रखता है किसी प्रकार के विनिमय से नहीं। भगवत्पाद की आज्ञानुसार नियमों में बँधे हुए हम सभी ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि वंशों में उत्पन्न हुए लोग परम प्रेम से इस आज्ञा को स्वीकार कराते हैं। इस विज्ञप्ति को भगवन्त स्वीकार करें। विश्व का कल्याण हो। युधिष्ठिर शक 2663 आश्विन शुक्ल 15 सम्राट् सुधन्वा।

विशेष - डॉ० दशरथ शर्मा अभिलेखीय साक्ष्यों के आधार पर लिखते हैं कि गोत्रोच्चार के अनुसार चौहान सोमवंशी ठहरते हैं। इतिहासकार श्यामल दास के अनुसार अग्निकुल के राजपूत मूलतः चन्द्रवंशी ओर सूर्यवंशी क्षत्रिय थे। कालान्तर में इन्होंने बौद्धमत अपना लिया था, जिसके कारण व्रात्यस्तोम यज्ञ करके इन्हें पुनः सनातन धर्म की मुख्यधारा में लाना पड़ा। यज्ञाग्नि से इनका पुनः संस्कार होने के कारण ये अग्निकुल के राजपूत कहलाये। कर्नल टाड चौहानों को सोमवंश की एक शाखा (यदुवेश) से सम्बन्धित मानते हैं। सुधन्वा अपने को युधिष्ठिर की परम्परा से प्राप्त राज्य का स्वामी कहते हैं। महाभारत से ज्ञात होता है कि युधिष्ठिर ने यादवों के गृहयुद्ध के पश्चात् अन्धक वंशी कृतवर्मा के पुत्र को मार्तिकावत शिनिवंशी सात्यकि के पुत्र यौयुधानि को सरस्वती नदी के तटवर्ती क्षेत्रों तथा इन्द्रप्रस्थ का राज्य श्री कृष्ण के प्रपौत्र वज्रनाभ को, श्री कृष्ण की मृत्यु के पश्चात् दे दिया था। महिष्मती का राज्य भी युधिष्ठिर द्वारा ही वहाँ के राजा को दिया गया था। यह जैमिनी के अश्वमेघ पर्व से ज्ञात होता है। कर्नल टाड, डॉ० रमेश चन्द्र मजूमदार एवं राजस्थानी इतिवृत्त चौहानों का मूल राज्य महिष्मती को ही मानते हैं।[1] सुधन्वा इसी वंश परम्परा के थे और आद्यशंकराचार्य के समकालीन थे।

❑

1- अमिटकाल रेखा लेखक परमेश्वर नाथ मिश्र पृष्ठ 59

श्रीमद् आद्य शंकराचार्य विरचितम्

मठाम्नाय-महानुशासनम्

।। अथ शारदा-मठाम्नायः।।

प्रथमः पश्चिममाम्नायः,शारदामठ उच्यते।

कीटवारः सम्प्रदायस्तस्य तीर्थाश्रमौ पदे।।[1]

पहला पश्चिमाम्नाय है, जिसे शारदामठ कहा जाता है। इसका कीटवार सम्प्रदाय है, तथा तीर्थ और आश्रम इसके योग पट्ट हैं।

द्वारकाख्यं हि क्षेत्रं स्याद्, देवःसिद्धेश्वरः स्मृतः।

भद्रकाली तु देवी स्यादाचार्यो विश्वरूपकः।।[2]।।2।।

इसके क्षेत्र का नाम द्वारका है, देवता सिद्धेश्वर हैं, देवी भद्रकाली हे। तथा आचार्य (प्रथम) विश्वरूप (सुरेश्वराचार्य) हैं।

गोमती तीर्थममलं, ब्रह्मचारी स्वरूपकः।

सामवेदस्य वक्ता च तत्र धर्मं समाचरेत्।।3।।

निर्मल तीर्थ गोमती है, स्वरूप नामक ब्रह्मचारी सामवेद का वक्ता कहा गया है, वह वहाँ धर्म का पालन करे। अर्थात्,स्वरूप नामक योगपट्ट धारक ब्रह्मचारी के मुख्य अध्ययन का विषय सामवेद है।

जीवात्मा परमात्मैक्यबोधो यत्र भविष्यति।

तत्वमसि महावाक्यं गोत्रोऽविगत उच्यते।।4।।

जीवात्मा और परमात्मा के अभेद का बोध कराने वाले (इस आम्नाय) का महावाक्य तत्वमसि है, तथा गोत्र अविगत कहा जाता है।

सिन्धु-सौवीर-सौराष्ट्र महाराष्ट्रास्तथान्तराः।

देशाः पश्चिमदिक्स्था ये शारदामठ भागिनः।।5।।

सिन्धु सौवीर (कच्छ),सौराष्ट्र (काठियावाड़) महाराष्ट्र और इनके मध्यवर्ती (भारत के)

---

1. शुभौ-पाठान्तर

2. हस्तमालक देशिकः पाठान्तर

पश्चिम दिशा में स्थित प्रदेश शारदा-मठ की अधिकार सीमा में हैं।

त्रिवेणी - संगमे तीर्थे तत्वमस्यादि-लक्षणे।
स्नायातत्वार्थ-भावेन तीर्थनाम्ना[1] स उच्यते।।6।।

जो तत् त्वम् असि (इस तीन पदात्मक) महावाक्यरूपी त्रिवेणी- संगम में तीर्थ की भावना से स्नान करता है उसे तीर्थ नाम से कहा जाता है।

आश्रम-ग्रहणे प्रौढ़-आशापाश-विवर्जितः।
यातायात-विनिर्मुक्त एव (ह्य) आश्रम उच्यते।[2] ।।7।।

संन्यास-आश्रम (के नियमों के धारण) में दृढ़, आशा के बन्धन (अर्थात् ऐहिक तथा पारलौकिक फलभोग) से रहित (संसार के) आवागमन से मुक्त संन्यासी ही आश्रम कहा जाता है।

कीटादयो विशेषेण वार्यन्ते यत्र जन्तवः।
भूतानुकम्पया नित्यं कीटवारः स उच्यते ।।8।।

जिसमें प्राणियों पर दया के कारण विशेष रूप से कीट आदि (क्षुद्र जन्तुओं) को सदा प्राणहानि से बचा दिया जाता है, वह सम्प्रदाय कीटवार कहा जाता है।

स्वं स्वरूपं विजानाति स्वधर्म-परिपालकः।
स्वानन्दे क्रीडते नित्यं स्वरूपोबटुरुच्यते।।9।।

जो अपने स्वरूप को भली भाँति पहचानता है, स्वधर्म का परिपालन करता है आत्मानन्द में नित्य क्रीड़ा करता है, वह ब्रह्मचारी स्वरूप कहा जाता है।

।। इति शारदा मठाम्नायः ।।

❑

1. एतदाश्रमलक्षणम् मठाम्नाय-महानुशासनम्-टीकाकार कामेश्वर नाथ मिश्र की अनुमति से साभार ।।7।।

गोवर्धनमठाम्नायः

पूर्वाम्नायो द्वितीयः स्याद् गोवर्धनमठः स्मृतः।

भोगवारः सम्प्रदायो वनारण्ये पदे स्मृते।।10।।

दूसरा पूर्वाम्नाय है। जिसे गोवर्धन मठ माना जाता है। उसका भोगवार सम्प्रदाय तथा वन अरण्य पद (योगपट्ट) हैं।

पुरूषोत्तमं तुक्षेत्रं स्याज्जगन्नाथोऽस्य देवता।

विमलाख्या हि देवीस्यादाचार्यः पद्मपादकः।।11।।

इसका क्षेत्र पुरुषोत्तम है, तथा जगन्नाथ देवता हैं, विमला देवी हैं और पद्मपाद (प्रथम) आचार्य है।।

तीर्थं महोदधिः प्रोक्तं ब्रह्मचारी प्रकाशकः।

महावाक्यं च तत्र स्यात् प्रज्ञानं ब्रह्म चोच्यते।।12।।

यहाँ का तीर्थ महोदधि कहा गया है, और ब्रहमचारी प्रकाश। यहाँ का महावाक्य 'प्रज्ञानं ब्रह्म' है।

ऋग्वेद-पठनं चैव कश्यपो गोत्रमुच्यते।

अंग-बंग-कलिंगाश्च मगधोत्पल-बर्बराः।

गोवर्धनमठाधीना देशाः प्राचव्यवस्थिताः।।13।।

(इस मठ के ब्रह्मचारी के लिए) ऋग्वेद का पठन विहित है तथा गोत्र का नाम काश्यप है। अंग (भागलपुर) बंग (बंगाल), कलिंग (दक्षिणपूर्वभारत),मगध, उत्कल और बर्बर (वनांचल प्रदेश) जों पूर्व दिशा में है, गोवर्धन पीठ की सीमा में आते हैं।

सुरम्ये निर्जने स्थाने वने वासं करोति यः।[1]

आशाबन्ध विर्निमुक्तो वन नामा स उच्यते।।14।।

जो सुन्दर एकान्त वन में निवास करता है तथा आशा के बन्धन से मुक्त है, वह (सन्यासी) वन नाम से कहा जाता है।

---

1. सुरम्यनिर्जने देशेवासं नित्यं करोति यः। पाठान्तर

अरण्ये संस्थितो नित्यमानन्दे नन्दने वने।

त्यक्त्वा सर्वमिदं विश्वमरण्यं परिकीर्त्यते।।15।।[1]

जो इस समस्त विश्व को छोड़कर आनन्दरूपी नन्दन नामक अरण्य में रहता है, (वह संन्यासी अरण्य कहा जाता है।

भोगो विषय इत्युक्तो वार्यते येन जीविनाम्।

सम्प्रदायो यतीनांच भोगवारः स उच्यते।।16।।

भोग को विषय कहा जाता है। जिसके द्वारा प्रणियों को (भोगों से) अलग किया जाता है, संन्यासियों का वह सम्प्रदाय भोगवार कहा जाता है।

स्वयं ज्योतिर्विजानाति योगयुक्ति विशारदः।

तत्वज्ञानप्रकाशेन तेन प्रोक्तः प्रकाशकः।।17।।

जो स्वयं ज्योतिः स्वरूप (आत्मा) को जानता है, जो योगसाधना में निपुण है, तथा तत्वज्ञान प्रकाश से युक्त है, इसी कारण (यहाँ का ब्रहमचारी) प्रकाश (कहा जाता) है।

।।इति गोवर्धन मठाम्नायः।।

।।ज्योर्तिमठाम्नायः।।

तृतीय स्तूत्तराम्नायो ज्योतिर्नाम मठो भवेत्।

श्रीमठश्चेति वा तस्य नामान्तरमुदीरतम्।।18।।

तीसरा उत्तराम्नाय, उत्तर दिशा का है जो कि ज्योर्तिमठ है, तथा इसका दूसरा नाम श्री मठ भी है।

आनन्दवारो विज्ञेयः सम्प्रदायोऽस्य सिद्धिदः।

पदानि तस्य ख्यातानि गिरि-पर्वत-सागराः।।19।।

इसके सिद्धिदायक सम्प्रदाय को आनन्दवार जानना चाहिए। इसके पद योगपट्ट(यतिनाम) गिरि, पर्वत और सागर हैं।

बदरीकाश्रमं क्षेत्रं, देवो नारायणः स्मृतः।

पूर्णागिरिश्च देवी स्यादाचार्यस्तोटकः स्मृतः।।20।।

इसका क्षेत्र बदरिकाश्रम है, देवता नारायण है; देवी पूर्णा गिरि हैं और आचार्य तोटकाचार्य हैं

1.आरण्ये- आरण्यं लक्षणं किल। पाठान्तर

तीर्थं चालकनन्दाख्यम् आनन्दो ब्रह्मचार्यभूत्।

अयमात्मा ब्रह्म चेति महावाक्यमुदाहृतम्।।21।।

अलक नन्दा तीर्थ है, तथा ब्रह्मचारी का नाम आनन्द है। अयमात्मा ब्रह्म' (यह आत्मा ब्रह्म है) यह महावाक्य है।

अथर्ववेद-प्रवक्ता च भृग्वाख्यं गोत्रमुच्यते।

कुरु कश्मीर-काम्बोज पांचालादि विभागतः।

ज्योर्तिमठवशा देशा उदीचीदिगवस्थिताः।।22।।

आनन्द नामक ब्रह्मचारी अथर्ववेद का उपदेशक होता है। (इस मठ का) गोत्र भृगु कहा जाता है। कुरु (हस्तिनापुर कुरुक्षेत्र) कश्मीर, काम्बोज, (हरियाणा तथा पश्चिमोत्तर उत्तर-प्रदेश) पांचाल (पंजाब) तथा उत्तर दिशा के सभी प्रदेश ज्योर्तिमठ की सीमा में आते हैं।

वासो गिरिवने[1] नित्यं,गीताध्ययन-तत्परः।[2]

गम्भीराचल बुद्धिश्च, गिरिनामा स उच्यते।।23।।

जो गीताध्ययन में तत्पर हो तथा जिसका पर्वतों और काननों में निवास हो तथा जिसकी बुद्धि गम्भीर एवं निश्चल हो उसे गिरि नामक (संन्यासी) कहा जाता है।

वसन्[3] पर्वत मूलेषु प्रौढ़ं ज्ञानं विभर्ति यः[4]

सारासारं विजानाति पर्वतः परिकीर्त्यते[5] ।।24।।

पर्वतों की उपत्यका में जो निवास करता हो तथा जो दृढ़ ज्ञानी हो और जो सार-आसार को विशेष रूप से जानता हो वह पर्वत नामक संन्यासी कहा जाता है।

तत्वसागर-गम्भीर,ज्ञानरत्नपरिग्रहः।[6]

मर्यादां वै न लंघ्येत, सागरः परिकीत्यते।।25।।

तत्वों के गहरे समुद्र से जो ज्ञानरूपी रत्न ग्रहण करता हो ओर जो मर्यादा का उल्लंघन नहीं करता, वह यति सागर नाम से जाना जाता है।

---

1. वरे पठानतर
2. गीताभ्यासे हि तत्परः-पाठनतर
3. वसेत-पठान्तर
4. प्रौढ़ो यो ध्यान तसनः -पाठान्तर ।
5. परिकीर्तितः-पाठान्तर
6. वसेत सागर गम्भीरे घर रत्न परिग्रहः। मर्यादाश्चाऽनलंघेत-पाठान्तर

आनन्दो हि विलासश्च,वार्यते येन जीविनाम्।

सम्प्रदायो यतीनां चानन्दवारः स उच्यते।।26।।

जो सांसारिक प्राणियों को विषयोपभोग से विमुख करता है, यतियों के उस सम्प्रदाय को आनन्दवार कहा जाता है।

सत्यं ज्ञानमनन्तं यो नित्यं ध्यायेत तत्ववित्।

स्वानन्दे रमते चैव आनन्दः परिकीर्त्यते।।२७।।

अनन्त सत्य ज्ञान तथा ब्रह्म का नित्य चिन्तन करने वाला.आत्मा के आनन्द में निरन्तर भ्रमण करने वाला ज्ञानी आनन्द कहा जाता है।

।।इति ज्योर्तिमठाम्नायः।।

।। श्रृंगेरी-मठाम्नायः।।

चतुर्थो दक्षिणाम्नायः श्रृंगेरी तु मठो भवेत्।

सम्प्रदायो भूरिवारो भूर्भुवो गोत्रमुच्यते।।27।।

चौथा दक्षिणाम्नाय है। मठ श्रृंगेरी है, सम्प्रदाय भूरिवार है तथा गोत्र भूर्भुवः है।

पदानि त्रीणि ख्यातानि,सरस्वती भारतीपुनी।

रामेश्वराह्यं क्षेत्रमादिवाराह-देवता।।29।।

तीन पद (योगपटट) प्रसिद्ध हैं, सरस्वती, रती ओर पुरी रामेश्वर नामक क्षेत्र है तथा आदि वाराह देवता हैं।

कामाक्षी तस्य देवी स्यात् सर्वकामफल-प्रदा।

हस्तामलक आचार्य स्तुंग भद्रेति तीर्थकम्।।30।।

सभी प्रकार की कामनाओं को पूर्ण करने वाली देवी कामाक्षी इस मठ की देवी हैं, तथा हस्तामलक आचार्य और तुंगभद्रा तीर्थ है।

चैतन्याख्यो ब्रह्मचारी, यजुर्वेदस्य पाठकः।

अहं ब्रह्मास्मि तत्रैव महावाक्यं समीरितम्।।31।।

यजुर्वेद का अध्ययन करने वाले इस आम्नाय के ब्रह्मचारी चैतन्य नाम धारक होते हैं। इनका महावाक्य 'अहं ब्रह्मास्मि' कहा गया है।

ध्र-द्रविड़-कर्णाट केरलादि प्रभेदतः।

श्रृंगेर्यधीना देशास्ते, ह्यवाची दिगवस्थिताः।।32।।

आन्ध्र, द्रविड़, कर्नाटक, केरल आदि विभिन्न देश जो दक्षिण दिशा में अवस्थित हैं श्रृंगेरी मठ के अधीन हैं।

स्वरज्ञानरतो नित्यं स्वरवादी कवीश्वरः।

संसार सागरासार हन्ताऽसो हि सरस्वती।।33।।

निरन्तर स्वर (श्वास-प्रश्वास-प्राणायाम) सम्बन्धी ज्ञान में रत स्वर सहित वेद वाचन में सक्षम, क्रानितदर्शियों में श्रेष्ठ तथा संसार रूपी समुद्र के अनवर त प्रसार को अवरूद्ध करने वाला सन्यासी सरस्वती है।

विद्याभरेण सम्पूर्णः सर्वभारं परित्यजन्।

दुःखभारं न जानाति भारती परिकीर्त्यते।।34।।

विद्या की राशि से पूर्ण समस्त सांसारिक भारों को त्यागने वाला जो दुःख के भार को नहीं जानता है ऐसे सन्यासी को भारती कहा जाता है।

ज्ञान तत्वेन सम्पूर्णः पूर्णतत्व पदे स्थितः।

परब्रह्मरतो नित्यं पुरीनामा स उच्यते।।35।।

जो ज्ञान के तत्व से परिपूर्ण है, पूर्ण तत्व पद में स्थित है एवं नित्य परम ब्रह्म में प्रतिष्ठित है, वह सनयासी पुरी नाम से कहा जाता है।

भूरि शब्देन सौवर्ण्यं वार्यते येन जीविनाम्।

सम्प्रदायो यतीनां च भूरिवारः स उच्यते।।36।।

जो भूरि शब्द से वाच्य सुवर्णादि सम्पत्तियों के संग्रहं से प्राणियों को अलग करता है (अर्थात् वैराग्य की ओर ले जाता है) संन्यासियों का वह सम्प्रदाय भूरिवार कहा जाता है।

चिन्मात्रं चैत्यरहितमनन्तमजरं शिवम्।

यो जानाति स वै विद्वान् चैतन्यं तद्विधीयते।।37।।

चित्तविकारों-सुख दुःख आदि से अलिप्त अनन्त अजर एवं शिव चित्स्वरूप ब्रह्म को जो जानता है, वह विद्वान् है, उसके लिए चैतन्य नाम विहित है।

मर्यादैषा सुविज्ञेया चतुर्मठविधायिनी।

तामेतां समुपाश्रित्य आचार्याः स्थापिताः क्रमात्।।38।।

चारों मठों का विधान करने वाली इस मर्यादा (व्यवस्था) से भली भाँति अवगत होना चाहिए। इसी व्यवस्था के आधार पर चारों पीठों पर आचार्य स्थापित किए गए हैं।

।।इति श्रृंगेरी मठाम्नायः।।

अथ ऊर्ध्व मठाम्नायः

अथोर्ध्वे शेषा आम्नायास्ते[1] विज्ञानैकविग्रहाः।
पंचमस्तूर्ध्व आम्नायः सुमेरु मठ उच्यते।
सम्प्रदायोऽस्य काशी स्यात् सत्यज्ञानाभिधे पदे।।39।।

इसके बाद के शेषाम्नाय हैं। पाँचवाँ आम्नाय ऊर्ध्वम्नाय सुमेरुमठ कहा जाता है। इसका सम्प्रदाय काशी तथा सत्य और ज्ञान नामक उपाधियाँ (योगपट्ट) हैं।

कैलासः क्षेत्रमित्युक्तं देवताऽस्य निरंजनः।
देवी माया तथाचार्य ईश्वरोऽस्य प्रकीर्तितः।।40।।

सुमेरुमठ का कैलास क्षेत्र कहा गया है, इसके देवता निरंजन हैं देवी माया और आचार्य ईश्वर विख्यात है।

तीर्थं तु मानसं प्रोक्तं ब्रह्मतत्वावगाहि तत्[2]।
तत्र संयोग मात्रेण[3] संन्यासं समुपाश्रयेत्।।41।।

तीर्थ मानस कहा गया है, वह ब्रह्मतत्व में अवगाहन कराने वाला है। वहाँ(उसके) संयोग मात्र से -भावना मात्र-से संन्यास का आश्रय लेना चाहिए ।

सूक्ष्मवेदस्य वक्ता च तत्र धर्म समाचरेत्।
षष्ठः स्वात्माख्य आम्नायः परमात्मामठोमहान्।।42।।

वहाँ का आचार्य सूक्ष्म वेद का उपदेशक होता है, उस क्षेत्र में (भावनामय) धर्म का आचरण करना चाहिए।

।। इति सुमेरुमठाम्नायः।।

छठवाँ स्वात्मा नाम आम्नाय है ओर महान परमात्मा मठ है।

सत्वतोषः सम्प्रदायः पदं योगमनुस्मरेत्।
नभः सरोवरं क्षेत्रं परहंसोऽस्य देवता ।।43।।

इसका सम्प्रदाय सत्वतोष और उपाधि योग समझना चाहिए। क्षेत्र नभः सरोवर और देवता परम हंस है।

---

1. शेषाम्नायाः-पाठान्तर
2. तम -पाठान्तर
3. मार्गेण -पाठानतर

देवी स्यान्मानसी माया आचार्यश्चेतनाह्वयः।

त्रिपुटी तीर्थमुत्कृष्टं सर्वपुण्य प्रदायकम्।।44।।

मानसी माया देवी हैं और चेतन नामक आचार्य। सभी पुण्यों को देने वाला श्रेष्ठ तीर्थ त्रिपुटी है।

सप्तमो निष्कलाम्नायः सहस्रार्क द्युतिर्मठः।

सम्प्रदायोऽस्य सच्छिष्यः श्री गुरोः पादुके पदे।।45।।

सातवाँ निष्कल आम्नाय है, मठ है सहस्रार्क, द्युति इसका सम्प्रदाय है सच्छिष्य, तथा श्री गुरु की दानों पादुकाएँ ही पद हैं।

तत्रानुभूतिः क्षेत्रं स्याद् विश्वरूपोऽस्य देवाता।

देवी चिच्छाक्तिनाम्नी हि आचार्यः सद्‌गुरुः स्मृतः।।46।।

वहाँ का क्षेत्र अनुभूति है,इसके देवता विश्वरूप हैं, देवी का नाम चिच्छक्ति (चित् शक्ति) और आचार्य सद्‌गुरु कहे गए है।

सच्छास्त्र श्रवणं तीर्थं जरामृत्युविनाशकम्।

पूर्णानन्दप्रसादेन संन्यासं तत्र चाश्रयेत्।।47।।

अच्छे शास्त्रों का श्रवण ही तीर्थ है जिसका सेवन जरा मृत्यु का विनाशक है। पूर्ण आनन्द और प्रसन्नता के साथ यहाँ संन्यास लेना चाहिए।

आम्नायाः कथिता ह्येते यतीनां च पृथक् पृथक्।

तैः सर्वैश्चतुराचार्यैर्नियोगेन यथाक्रमम् ।।48।।

यतियों के ये आम्नाय पृथक् पृथक् कहे गए हैं। सभी चारों आचार्यों को चाहिए कि इस कम में व्यवस्था का पालन करें स्वधर्म का आचरण करावें।

प्रयोक्तव्याः स्वधर्मेषु शासनीयास्ततोऽनन्था।

कुर्वन्तु एव सततमटनं धरणीतले।।49।।

स्वधर्म से अन्यथा आचरण करने वालों को अनुशासित करें तथा निरन्तर अपने क्षेत्र में अवश्यमेव भ्रमण करते रहें।

विरुद्धाचरणप्राप्तावाचार्याणां समाज्ञया।

लोकान् संशीलयन्त्येव स्वधर्माप्रतिरोधतः।।50।।

लोगों में धर्म के विरूद्ध आचरण की प्रवृत्ति बढ़ने पर (शासकों राजाओं) को चाहिए कि

आचार्य की आज्ञा से अपने धर्म में प्रतिरोधन करते हुए प्रजा के आचरण की परीक्षा करें।

स्व-स्वराष्ट्रप्रतिष्ठित्यै संचारः सुविधीयताम्।
मठे तु नियतोवास आचार्यस्य न युज्यते।।51।।

अपने अपने राष्ट्र (क्षेत्राधिकार) में धार्मिक प्रतिष्ठा हेतु आचार्य निरन्तर भ्रमण करते रहें। केवल मठ में ही निवास करना आचार्य के लिए कथमपि उचित नहीं।

वर्णाश्रम सदाचारा अस्माभिर्ये प्रसाधिताः।
रक्षणीयाः सदैवैते स्व-स्व भागे यथाविधि।।52।।

हम लोगों ने (अर्थात् शंकराचार्य ने) जिस सदाचार युक्त वर्णाश्रम धर्म की मर्यादा स्थिर की है उसे अपने अपने क्षेत्रों में उसी रूप में सुरक्षित रखना चाहिए।

यतो विनष्टिर्महती धर्मस्यास्य प्रजायते।
मान्द्यं सन्त्याज्यमेवात्र दाक्ष्यमेव समाश्रयेत्।।53।।

यदि आचार्य अपने-अपने क्षेत्रों में भ्रमण नहीं करेंगे तो उपदेश के अभाव में प्रजा में धर्म की अत्यन्त क्षति होने लगती है इसलिए मन्दता अर्थात प्रमाद का परित्याग कर दक्षता का आश्रय ग्रहण करना चाहिए अर्थात दक्षता पूर्वक धर्म का प्रचार करना चाहिए।

परस्पर विभागे तु न प्रवेशः कदाचन।
परस्परेण कर्तव्या ह्याचार्येण व्यवस्थितिः।।54।।

आचार्यों को चाहिए कि एक दूसरे के परस्पर विभाग अर्थात् क्षेत्र में प्रवेश न करें। परस्पर मिलकर विचार विनिमय द्वारा (आवश्यक होने पर) (समस्या का निदान) व्यवस्था कर लेना चाहिए।

मर्यादाया विनाशेन लुप्येरन्नियमाः शुभाः।
कलहंगार सम्पत्तिरतस्तां परिवर्जयेत् ।।55।।

मठों की मर्यादा नष्ट हो जाने पर शुभ (कल्याणकारी) नियम (व्यवस्था) लुप्त (नष्ष्ट) हो जाती है। परस्पर कलह की ज्वाला (अंगार) भड़कने लगता है। अतः इस कलहरूपी अग्नि के प्रसार को रोकना चाहिए।

परिव्राडार्य मर्यादा[1] मामकीनां यथाविधि।
चतुष्पीठाधिगां सत्तां प्रयुंज्याच्च पृथक् पृथक्।।56।।

---

1. आर्यमर्यादाम्-पाठान्तर

शुद्ध मर्यादा वाला यति (सन्यासी) विधि पूर्वक चारों पीठों की सत्ता का प्रयोग पृथक् पृथक् रूप से करे। अर्थात् आर्यमर्यादा के अनुरूप आचरणकरने वाला सन्यासी एक साथ चारों पीठों पर आचार्य के दायित्वों का निर्वाह कर सकता है।

शुचिर्जितेन्द्रियो वेद वेदांगादि विशारदः।

योगज्ञः सर्वशास्त्राणां स मदास्थानमाप्नुयात्।।57।।

जो पवित्र,जितेन्द्रिय और वेद वेदांग में दक्ष हों तथा सभी शास्त्रों में योग्य (पारंगत) हों वही मेरे पीठ का अधिकारी हो सकता है।

उक्त लक्षण सम्पन्नः स्याच्चेन्मत्पीठ भाग् भवेत्।

अन्यथा पीठारूढ़ पीठोऽपि निग्रहार्हो मनीषिणाम्।।58।।

उपर्युक्त कहे गए लक्षणों से युक्त व्यक्ति ही मेरे पीठ का अधिकारी हो सकता है, अन्यथा पीठारूढ़ होने पर भी उसे मनीषियों द्वारा पीठ से हटा देना चाहिए।

न जातु मठ मुच्छिन्द्यादधि कारिण्युपस्थिते।

विघ्नानामपि बाहुल्यादेष धर्मः सनातनः।।59।।

सुयोग्य अधिकारी के रहते मठ परम्परा का उच्छेद कथमपि नहीं होने देना चाहिए चाहे बहुत से विघ्न ही क्यों न उपस्थित हों। यही सनातन धर्म है।

अस्मत्पीठसमारूढ़ः परिव्राडुक्तलक्षणः।

अहमेवेति विज्ञेयो 'यस्य देव' इतिश्रुतेः[1] ।।60।।

उपरोक्त लक्षणों से युक्त (अर्थात् ऊपर बताए गए योग्यताओं से विभूषित सन्यासी) जो मेरे पीठ पर अभिषिक्त हो आसीन हो उसे मेरा ही स्वरूप (अर्थात वह मैं ही हूँ (शंकर ही हूँ ऐसा) समझना (मानना) चाहिए। इस सम्बन्ध में 'यस्य देव' इत्यादिक श्रुतियाँ ही प्रमाण हैं।

एक एवाभिषेच्यः स्यादन्ते लक्षण सम्मतः।

तत्तत्पीठे क्रमेणैव न बहु युज्यते क्वचित्।।61।।

आचार्य के ब्रह्मीभूत होने पर उपरोक्त लक्षणों से सुसम्पन्न एक ही व्यक्ति (आचार्य) को तत्तत्पीठ पर अभिषिक्त करना चाहिए। एक पीठ पर एक से अधिक आचार्य का रहना उचित नहीं अर्थात एक पीठ पर एक ही आचार्य को होना चाहिए।

---

1. यस्य देवे' पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।

सुधन्वनः समौत्सुकय निवृत्यै धर्म-हेतवे।

देवराजोपचारांश्च यथावदनुपालयेत्।।62।।

धर्म के रक्षार्थ तथा महाराजा सुधन्वा की उत्कण्ठा के शान्त्यर्थ, शंकराचार्यों को चाहिए कि वे देवराज इन्द्र की भाँति समस्त उपचारों यथा राजचिह्न छत्र, चामर, सिंहासन आदि को यथावत धारण करें।

केवलम् धर्ममुदिश्य विभवो ब्रम्हचेतसाम्।

विहितश्चोपकाराय पद्मपत्रनयं व्रजेत्।।63।।

केवल धर्म के उद्देश्य एवं परोपकार की भावना से ही ब्रह्मनिष्ठ आचार्यों के लिए ऐसे वैभव का विधान है उन्हें कमल पत्र की भाँति निर्लिप्त भाव से रहना चाहिए।

सुधन्वा हि महाराजस्तथान्ये च नरेश्वराः।

धर्म परम्परीमेतां पालयन्तु निरन्तरम्।।64।।

महाराज सुधन्वा तथा अन्य सभी नरेशों को चाहिए कि वे धर्म की इस परम्परा का निरन्तर पालन करें।

चार्तुवण्यं यथायोग्यं वांगमनः कार्यकर्मभिः।

गुरोः पीठं समर्चेत विभागानुक्रमेण वै।।65।।

चारों वर्णों को चाहिए कि वे मनसा, वाचा, कर्मणा अपने अपने गुरूपीठ की परम्परायों की पूजा अभ्यर्चना करें।

धरामालम्ब्य राजानः प्रजाभ्यः कर भागिनः।

कृताधिकारा आचार्या धर्मतस्तद्वदेव हि।।66।।

जिस प्रकार से बौध राजा प्रजा से कर गहण करता है उसी प्रकार से आचार्य भी धर्मस्व (धर्म कार्य हेतु) कर ग्रहण करने के अधिकारी हैं।

धर्मो मूलं मनुष्याणां स चाचार्यावलम्बनः।

तस्मादाचार्य सुमणेः शासनं सर्वतोऽधिकम्।।67।।

मुनष्यों का मूल धर्म है और वह आचार्य पर अवलम्बित है(निर्भर है)। इसलिए आचार्य रूप सुमणि का शासन सर्वोच्च है।

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन शासनं सर्वसम्मतम्।

आचार्यस्य विशेषेण ह्यौदार्यभर भागिनः।।68।।

इसलिए सर्वप्रयत्न से उदारता से पूर्ण आचार्य का शासन विशेष रूपेण सभी को मानना चाहिए।

आचार्याक्षिप्तदण्डास्तु कृत्वा पापानि मानवाः।
निर्मलाः स्वर्गमायानित सन्तः सुकृतिनो यथा।।69।।

मानव अपने द्वारा किए गए पापों से आचार्य द्वारा बताए गए (दण्ड) प्रायश्चित को भोग कर शुद्ध हो जाते हैं तथा पुण्यात्माओं की भाँति स्वर्ग जाते हैं।

इत्येव मनुरप्याह गौतमोऽपि विशेषतः।
विशिष्ट शिष्टचारोऽपि मूलादेव प्रसिद्ध्यति।।70।।

इसी प्रकार मनु ने तथा विशेषकर गौतम ने भी गुरु की गरिमा बतलाई तथा (कहा है कि) मूल (वेद) से ही विशेष प्रकार के शिष्टाचारों की सिद्धि होती हैं।[1]

तानाचार्योपदेशांश्च राजदण्डाँश्च पालयेत्।
तस्मादाचार्य राजानावनवद्यौ न निन्दयेत्।।71।।

आचार्य के उन उपदेशों और राजा द्वारा दिए गए दण्ड का लोगों को पालन करना चाहिए। इसलिए आचार्य और राजा दानो शुद्ध एवं पवित्र हैं। उनकी कभी निन्दा नहीं करनी चाहिए।

धर्मस्य पद्धति ह्येषा जगतः स्थितिहेतवे।
सर्ववर्णाश्रमाणां हि यथा शास्त्रं विधीयते।।72।।

धर्म की यह पद्धति संसार के रक्षणार्थ सभी वर्णों एवं आश्रमों के लोगों हेतु शास्त्र मर्यादानुसारेण निर्धारित है।

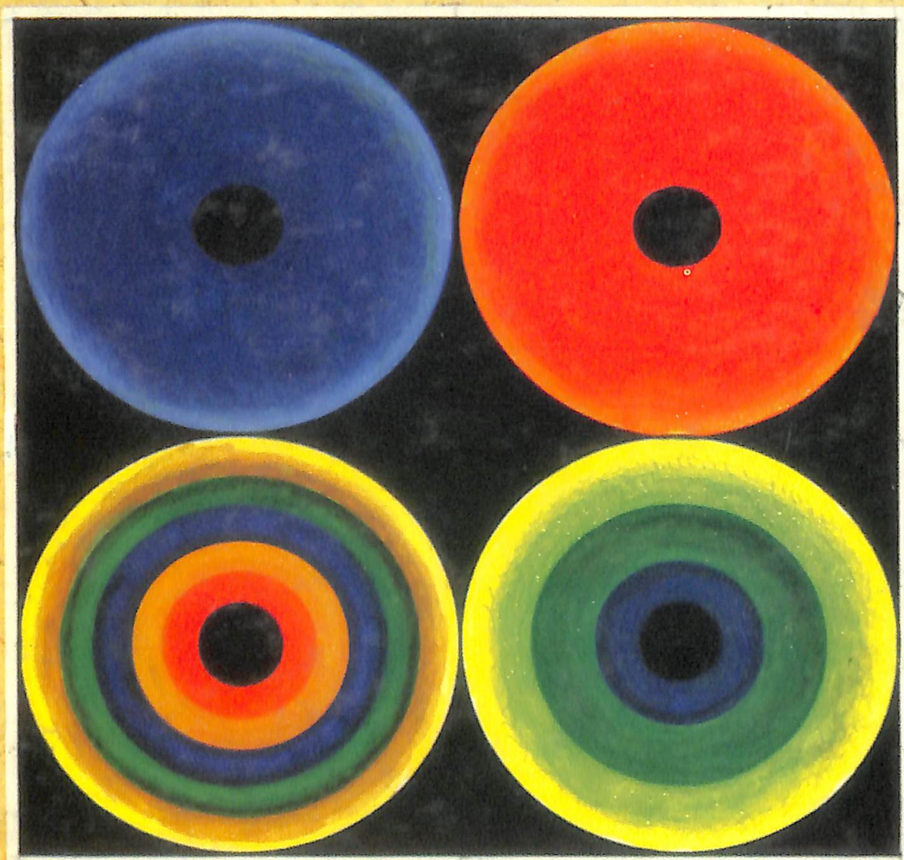
कृते विश्वगुरुर्ब्रह्मा त्रेतायामृषि सत्तमः।
द्वापरे व्यास एव स्यात् कलावत्र भवाम्यहम्।।73।।

सत्ययुग में ब्रह्मा, त्रेता में मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठ द्वापर में वेद व्यास तथा कलियुग में मैं (शंकराचार्य) जगद्गुरु हूँ।

❑

1. वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले चतद्विराम्।। मनुस्मृतिः 2/6।।
वेदोधर्ममूलंतद्विदान्चस्मृतिशीले। दृष्टोधर्म-व्यतिक्रमः साहसन्च महतां, न तु दृष्टोऽर्थोऽवर दौर्बल्यात् तुल्य बल विरोधे विकल्पः।। गौतमस्मऊतिः।।-मठाम्नाय-महानुशासनम् की टीका से टीकाकार डॉ० कामेश्वरनाथ मिश्र।

शंकराचार्य और उनकी परम्परा



डॉ० रामजी मिश्र